



ज्ञान तत्त्व

SEPTEMBER 2026

अंक - 11

सत्यता एवं निष्पक्षता का निर्भीक पाक्षिक

पत्र

3

499



सामाजिक
आपातकाल और
वर्तमान वातावरण

4



प्रकाशन की तिथि - 16-09-2026

पोस्ट की तिथि - 01-10-2026

सिंहावलोकन

06 नई समाज व्यवस्था

09 मुनि जी की विविध विषयों पर लेख

15 खुला पत्र: हर्ष मंदर जी के नाम
ज्ञानेन्द्र आर्य

17 प्रकृति विरोधी जीवन और
मनुष्यता का पतन
- श्रुवेदु मोहापात्रा

18 संस्थागत समाचार

पत्र व्यवहार का पता

बजरंग लाल अग्रवाल पोस्ट बाक्स 15, रायपुर (छ.ग.) 492021

website : margdarshak.info

प्रकाशक, संपादक व स्वामी - बजरंगलाल

9617079344

mail : Support@margdarshak.info

मुख्य कार्यालय-
ज्ञानयज्ञ परिवार आश्रम
रामानुजगंज छत्तीसगढ़ 497220
8318621282, 9630766001

लोक स्वराज अभियान
303 कृष्णा शिप्रा अजूरा अपार्टमेंट कौशांबी
गाजियाबाद 201012
9325683604, 9012432074

प्रधान संपादक

बजरंग लाल अग्रवाल
(बजरंग मुनि)

संपादक मण्डल

नरेन्द्र सिंह
संजय तिवारी
विपुल आदर्श

सहयोगी संपादक

ज्ञानेन्द्र आर्य

सदस्यता नियमन

संजय गुप्ता 872669477
कुशल दुबे 7999934238

सज्जा

लाल बाबू रवि
वितरण एवं मुद्रण सहयोग
रबीन्द्र विश्वास



प्रिय बंधु,

लोकव्यवस्था जागरण अभियान आपके सफल एवं सुखद जीवन की कामना करता है।

जैसा कि विदित है, आदरणीय बजरंग मुनि जी के मार्गदर्शन में तथा आप सभी के सहयोग से मा संस्थान विगत अनेक वर्षों से समाज व्यवस्था को अधिक यथार्थपरक, न्यायपूर्ण एवं समाज-केंद्रित बनाने के प्रयास में निरंतर कार्यरत है। ज्ञान यज्ञ परिवार के माध्यम से देशभर में संस्थान के संस्थागत ढाँचे के निर्माण का कार्य आगे बढ़ाया जा रहा है। इसी क्रम में देशव्यापी जनसंपर्क अभियान तथा विभिन्न प्रांतों में प्रांतीय अधिवेशनों का आयोजन किया जा रहा है।

इसी उद्देश्य को आगे बढ़ाते हुए लोकव्यवस्था जागरण अभियान द्वारा 8 अक्टूबर से 11 अक्टूबर 2026 तक चार दिवसीय “स्वराज पर्व” का आयोजन किया जा रहा है। यह पर्व समाज की शक्ति के विकेंद्रीकरण और लोकस्वराज की अवधारणा को जनसंवाद का विषय बनाने के लिए समर्पित होगा। इसका समापन 11 अक्टूबर 2026, आदरणीय जयप्रकाश नारायण जी की जयंती के अवसर पर होगा।

जयप्रकाश नारायण जी उन महान समाजचिंतकों में थे जिन्होंने केंद्रीकृत सत्ता के स्थान पर समाज की सक्रिय भागीदारी, लोकशक्ति और विकेंद्रीकरण को लोकतंत्र की आधारभूत आवश्यकता माना। उनकी विचारधारा हमें यह प्रश्न पूछने के लिए प्रेरित करती है कि क्या लोकतंत्र केवल सत्ता प्राप्त करने और सत्ता बदलने की प्रक्रिया है, अथवा समाज को स्वयं अपने जीवन से जुड़े निर्णयों में वास्तविक भूमिका देने की व्यवस्था भी है?

स्वराज पर्व इसी प्रश्न को समाज के बीच ले जाने का एक प्रयास है।

आज समाज श्रद्धा और आस्था के नाम पर होने वाले अनावश्यक संघर्षों, धार्मिक एवं जातीय विभाजन, व्यक्ति-केंद्रित वर्चस्व तथा बढ़ते वर्ग विद्वेष जैसी अनेक चुनौतियों से गुजर रहा है। इन समस्याओं का स्थायी समाधान केवल शासन के माध्यम से संभव नहीं है। इसके लिए समाज के भीतर ऐसी संस्थाओं का निर्माण आवश्यक है जो संवाद, विवेक, सहयोग, सामाजिक उत्तरदायित्व और लोकस्वराज की भावना को मजबूत कर सकें।

आइए, आदरणीय जयप्रकाश नारायण जी के विचारों से वैचारिक प्रेरणा लेते हुए इस दिशा में एक नई पहल करें।

8 से 11 अक्टूबर के बीच अपने क्षेत्र में “स्वराज पर्व” के कार्यक्रम आयोजित करें, “लोकस्वराज की अवधारणा” विषय पर वैचारिक संगोष्ठियाँ एवं संवाद आयोजित करें और समाज के संस्थागत पुनर्निर्माण के इस प्रयास में अपनी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करें। कार्यक्रम की सूचना अभियान को प्रेषित करें।

यह समय केवल किसी महापुरुष को स्मरण करने का नहीं, बल्कि उनके विचारों को समाज के वर्तमान प्रश्नों से जोड़कर आगे बढ़ाने का है।

आइए, स्वराज को केवल विचार न रहने दें, उसे समाज की जीवन-पद्धति बनाने के लिए मिलकर आगे बढ़ें।

सामाजिक आपातकाल और वर्तमान वातावरण

जब किसी अव्यवस्था से निपटने के लिए नियुक्त इकाई पूरी तरह असफल हो जाये तथा अल्पकाल के लिए सारी व्यवस्था में मुख्य इकाई को हस्तक्षेप करना पड़े तो ऐसी परिस्थिति को आपातकाल कहते हैं। व्यक्ति और समाज एक दूसरे के पूरक होते हैं। दोनों के अपने अपने स्वतंत्र अस्तित्व भी होते हैं तथा एक दूसरे के सहभागी भी। समाज सर्वोच्च होता है तथा राष्ट्र सहित अन्य सभी इकाइयाँ उसकी सहायक होती हैं। वैसे तो सम्पूर्ण विश्व की सामाजिक परिस्थितियाँ आपातकाल के अनुरूप हैं किन्तु हम वर्तमान समय में पूरे विश्व की चर्चा न करके अपनी चर्चा को भारत तक ही सीमित रख रहे हैं।

आपातकाल कई प्रकार के होते हैं जिसमें आर्थिक, राजनैतिक, राष्ट्रीय, सामाजिक, बौद्धिक, धार्मिक, आदि मुख्य माने जाते हैं। आपातकाल मुख्य रूप से उस परिस्थिति को कहते हैं जब कोई व्यक्ति या व्यक्ति समूह अन्य लोगों की इच्छा के विरुद्ध उन्हें अपनी नीतियों पर काम करने के लिए बाध्य कर दे। यद्यपि भारत में आर्थिक धार्मिक तथा अन्य परिस्थितियाँ भी खतरनाक मोड़ ले रही हैं तथा सब पर सोचने की आवश्यकता है किन्तु हम यहाँ समाज पर राज्य के खतरे तक ही अपने को सीमित रख रहे हैं। राज्य की असफलता सिद्ध करने के लिए कुछ लक्षणों पर विचार करना होगा-

(1) जब राज्य व्यवस्था सुरक्षा और न्याय की तुलना में जनकल्याण के कार्यों को प्राथमिकता देना शुरू कर दे लोकहित का स्थान लोकप्रियता ले ले। ग्यारह समस्याएँ-(1) चोरी, डकैती, लूट (2) बलात्कार (3) मिलावट कमतौलना (4) जालसाजी, धोखाधड़ी (5) हिंसा और आतंक (6) चरित्रपतन (7) भ्रष्टाचार (8) साम्प्रदायिकता (9) जातीय कटुता (10) आर्थिक असमानता (11) श्रम शोषण। स्वतंत्रता के बाद ये सभी समस्याएँ लगातार बढ़ रही हैं तथा भविष्य में भी किसी समस्या के नियंत्रण की स्पष्ट योजना नहीं दिख रही है। नरेन्द्र मोदी के आने के बाद कुछ समाधान की जो धुधली सी रुपरेखा दिख रही है वह भी व्यक्तिगत और तानाशाही तरीके से आ रही है, व्यवस्थागत और लोकतांत्रिक तरीके से नहीं।

(2) समाज व्यवस्था पूरी तरह छिन्न भिन्न हो गई है। समाज का स्वरूप जानबूझकर इतना कमजोर कर दिया गया है कि या तो राज्य ही समाज का प्रतिनिधित्व करता दिख रहा है अथवा छोटे छोटे समाज तोड़क संगठन। राज्य योजनापूर्वक समाज को धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रियता, उम्र, लिंग, गरीब अमीर, किसान मजदूर, शहरी ग्रामीण आदि वर्गों में बांटकर वर्ग विद्वेष, वर्ग संघर्ष बढ़ाने का प्रयास कर रहा है। राज्य समाज का प्रबंधक न होकर कष्टोडियन बन

बैठा है।

(3) समाज का संस्थागत ढांचा कमजोर करके संगठनात्मक ढांचा मजबूत किया जा रहा है। सब जानते हैं कि संस्थाएँ समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। तो संगठन आवश्यकताओं को पैदा करते हैं। फिर भी इतना जानते हुए भी संगठनों को बढ़ावा दिया जा रहा है।

(4) चिंतन गौण हो गया है और प्रचार महत्वपूर्ण हो गया है। यहाँ तक कि संसद में भी चिंतन का वातावरण कभी नहीं बनता। भारत संसदीय लोकतंत्र की आंख मूंदकर नकल कर रहा है जबकि उसे भारतीय परिवेश में नई व्यवस्था के प्रारूप पर चिंतन करना चाहिए था।

(5) समाज में अहिंसा कायरता का पर्याय बन गई है। दो बातें भारतीय संस्कृति का आधार मानी जाने लगी हैं- (1) मजबूत से दबा जाये और कमजोर को दबाया जाये। (2) न्यूनतम सक्रियता और अधिकार लाभ के मार्ग खोजे जाये। भारत दोनों दिशाओं में लगातार बढ़ रहा है।

(6) समाज लगातार व्यक्ति केन्द्रित होता जा रहा है। विचार केन्द्रित नहीं, नीति केन्द्रित नहीं, सिद्धांत केन्द्रित भी नहीं। बिना विचारे व्यक्ति के पीछे चलने की प्रवृत्ति निरंतर बढ़ाई जा रही है।

इस तरह से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि वर्तमान भारत की सामाजिक परिस्थितियाँ सामाजिक आपातकाल के पूरी तरह उपयुक्त हैं।

स्वतंत्रता के बाद यदि हम इस गिरावट के कारणों की समीक्षा करें तो इसमें दो लोगों का विशेष योगदान दिखता है- (1) पंडित नेहरु (2) भीमराव अम्बेडकर। पंडित नेहरु ने समाज को गुलाम बनाकर रखने के लिए समाजवाद को थोपने का प्रयास किया तो डॉ अम्बेडकर ने अपने राजनैतिक स्वार्थ के लिए सामाजिक एकता को छिन्न भिन्न करने में अपनी पूरी शक्ति लगाई। यदि नेहरु और अम्बेडकर की आपस में तुलना करें तो पंडित नेहरु की नीतियाँ गलत थीं किन्तु नीयत पर अभी संदेह नहीं किया जा सकता तो भीमराव अम्बेडकर की नीतियाँ भी गलत थी और नीयत भी। यदि हम वर्तमान समय में ठीक ठीक आकलन करें तो पंडित नेहरु का यथार्थ समाज के समक्ष स्पष्ट होने लगा है किन्तु भीमराव अम्बेडकर का कलंकित यथार्थ अभी सामने आना बाकी है। भारत की वर्तमान परिस्थितियाँ राजनैतिक सत्ता को मजबूर कर रही हैं कि वे अम्बेडकर जी को अल्पकाल के लिए महापुरुष ही बने रहने दें। मेरे विचार में गांधी और आर्य समाज भारत की वर्तमान सामाजिक समस्याओं का समाधान चाहते थे तो भीमराव अम्बेडकर उन सामाजिक समस्याओं को उभार कर उससे अपना राजनैतिक हित पूरा करना चाहते थे।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था वर्तमान समय में तीन तरफ से आक्रमण झेल रही है। (1) साम्यवाद (2) दारुल इस्लाम (3) पाश्चात्य संस्कृति। भारत में साम्यवाद का पतन शुरू होते ही साम्यवाद और दारुल इस्लाम ने हाथ मिला लिया और वह सबसे बड़ा खतरा बन गया। यदि राजनैतिक तौर पर तीन श्रेणियां मान ले (1) शत्रु (2) विरोधी (3) प्रतिस्पर्धी। तो साम्यवाद शत्रु, दारुल इस्लाम विरोधी और पाश्चात्य संस्कृति को प्रतिस्पर्धी में रखा जा सकता है। शत्रु हमारे विरोधी की सहायता में आ गया है। ऐसी परिस्थितियों में भारत को यह रणनीति बनानी होगी कि हम आपातकाल समझकर अपने प्रतिस्पर्धी के साथ समझौता करके विरोधी से मुकाबला करें। मुझे लगता है कि भारत सरकार पूरी बुद्धिमानी के साथ इस दिशा में आगे बढ़ रही है। किसी भी मामले में या तो तटस्थ भूमिका अपनाई जा रही है अथवा अमेरिका की तरफ झुकी हुई। हमारे कुछ मित्र यदा कदा ना समझी में अमेरिका की अनावश्यक और ऐसी आलोचना कर देते हैं जो किसी न किसी रूप में साम्यवाद दारुल इस्लाम की सहायक हो जाती है। हमें रणनीति के अन्तर्गत ऐसी आलोचनाओं से यथार्थ होते हुए भी बचना चाहिये। इसी तरह यदि हम हिन्दुत्व को भारतीय समाज व्यवस्था के साथ जोड़कर देखें तो संघ के कार्य हिन्दुत्व की सुरक्षा में तो सहायक रहे हैं किन्तु विस्तार में बाधक। राष्ट्रवाद भारतीय समाज व्यवस्था के लिए बहुत घातक है किन्तु वर्तमान समय में साम्यवाद और दारुल इस्लाम के खतरे को देखते हुए हमें संघ और उसके राष्ट्रवाद को शक्ति देने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है।

सामाजिक आपातकाल है। इसका समाधान खोजना होगा। हमारी भारत की राजनैतिक व्यवस्था किस दिशामें करवट लेगी यह अभी स्पष्ट नहीं है। सकारात्मक चार दिशाएं होती हैं- (1) प्रशंसा (2) समर्थन (3) सहयोग (4) सहभागिता। वर्तमान शासन व्यवस्था समस्याओं का समाधान कर पायेगी ऐसे लक्षण दिख रहे हैं किन्तु यह स्पष्ट नहीं दिखता कि समाज का अस्तित्व सदा सदा के लिए राज्य में विलीन हो जायेगा अथवा राज्य शासक की जगह प्रबंधक की ओर बढ़ेगा। ऐसी परिस्थिति में हमें सतर्क दृष्टिकोण अपनाना होगा। जब तक यह साफ नहीं दिखे कि भारत विचार मंथन की दिशामें बढ़ रहा है, तानाशाही और लोकतंत्र की जगह लोकस्वराज्य की ओर जा सकता है, तब तक हमें राज्य से सहभागिता नहीं करनी चाहिये। प्रशंसा, समर्थन और कभी कभी सहयोग भी किया जा सकता है किन्तु सहभागिता नहीं। जब तक साम्यवाद और दारुल इस्लाम का गठजोड़ बहुत कमजोर नहीं होता है तब तक हमें राज्य का सहयोग करना चाहिये, भले ही समाज की जगह राष्ट्र ही क्यों न मजबूत होता हो। किन्तु यदि खतरा बहुत कमजोर होता है तो हमें राष्ट्रवाद और तानाशाही प्रवृत्तियों से दूरी बनाकर एक सत्ता निरपेक्ष तथा सामाजिक शक्ति को मजबूत करना चाहिये। हमें पश्चिम की सांस्कृतिक आंधी का विरोध न

करके प्रतिस्पर्धा तक स्वयं को सीमित करना चाहिये। हमें सतर्क रहना चाहिए कि हम भारतीय राज्य व्यवस्था के सहभागी नहीं हैं और हम उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे हैं जब समाज मालिक होगा और राज्य मैनेजर या प्रबंधक।

मैंने सन 77 से ही यह आभास कर लिया था कि सामाजिक आपातकाल की परिस्थितियां हैं लेकिन ऐसी कोई टीम नहीं बन पा रही थी। सन 99 आते आते हम लोगों ने बैठकर भारत की वैकल्पिक संवैधानिक व्यवस्था का एक प्रारूप भी बना लिया जो आज भी मौजूद है। हम लोगों ने सन् 2000 से 2005 तक रामानुजगंज शहर में सर्वोदय के मार्ग दर्शन में नई राजनैतिक व्यवस्था का सफल प्रयोग भी किया। संविधान के प्रारूप और प्रयोग की सफलता के बाद हम सब लोगों ने 26 से 29 मार्च 2003 में सेवाग्राम में बैठकर ठाकुरदास जी बंग जी के नेतृत्व में सामाजिक आपातकाल की घोषणा की और समाधान की विस्तृत योजना बनाई। यह योजना ज्ञानतत्व क्रमांक 64 में विस्तारपूर्वक प्रकाशित भी है। उस योजना की सफलता इसलिए नहीं हो पायी कि सर्वोदय के सरकारी पदाधिकारियों ने इसका विरोध कर दिया। बाद में अन्ना जी के नेतृत्व में इस योजना पर काम शुरू हुआ और अरविंद केजरीवाल के धोखा देने के बाद वह काम रुक गया। 2015 के अक्टूबर माह से इस सामाजिक आपातकाल के समाधान की दिशामें निरंतर विस्तार होता रहा है। मार्च 2020 तक हम लोगों ने इस आपातकाल के समाधान का तरीका भी खोज लिया किन्तु प्राकृतिक कोरोना संकट के कारण कोई कार्य प्रारम्भ नहीं हो सका। अब पिछले 2-3 वर्षों से इस दिशा में लगातार सक्रियता बढ़ रही है। एक तरफ हम लोग समाधान की दिशा में आगे बढ़ने का प्रयास कर रहे हैं तो दूसरी ओर नरेंद्र मोदी मोहन भागवत और योगी आदित्यनाथ मिलकर संवैधानिक तरीके से भी सुशासन की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। हम जानते हैं की सुशासन इस समस्या का अच्छा समाधान नहीं है। फिर भी पिछली आपातकालीन व्यवस्था की तुलना में सुशासन का समर्थन करना ही उचित है। इन सबके बाद भी यह निश्चित नहीं है की भविष्य स्वशासन की दिशा में जाएगा अथवा गुलामी की दिशा में। यही कारण है की हम लोग एक तरफ सुशासन का सहयोग भी कर रहे हैं तो दूसरी तरफ स्वशासन की भूख भी आम लोगों में पैदा कर रहे हैं। अभी 2 महीने पहले अयोध्या सम्मेलन इसी उद्देश्य से आयोजित था और अभी सितंबर में रांची में भी ऐसा ही सम्मेलन हो रहा है। हम सिर्फ तीन दिशाओं में एक साथ बढ़ रहे हैं – पहली है संवैधानिक दिशा जिसके अनुसार हम चाहते हैं की संविधान तंत्र की सम्पूर्ण गुलामी से मुक्त हो। इसे हम लोक स्वराज्य कहते हैं। दूसरा कार्य है की परिवार व्यवस्था को अधिक मजबूत आधार देते हुए उसे और संशोधित किया जाए। तीसरा कार्य है की समाज में स्वतंत्र विचारको की एक टीम बने जो समय समय पर पूरे समाज का

मार्गदर्शन करती रहे। तीनों दिशाओं में हमारा कार्य लगातार जारी है। स्पष्ट है कि सामाजिक आपातकाल है और समाज सर्वोच्च की भूख आम लोगों में पैदा करनी होगी। परिस्थितिबश कुछ शक्तियों से समझौते भी करने पड़ सकते हैं। एक तरफ हम राज्य शक्तियों के साथ भी मिलकर सक्रिय हैं दूसरी तरफ हम संघ परिवार, गायत्री परिवार सर्वोदय, आचार्य कुल आर्य समाज जैसी

समविचारी सनाथाओं के साथ भी मिलकर काम कर रहे हैं, किन्तु लक्ष्य हमारा स्पष्ट है। जब तक हम राज्य को सारी दुनिया से और विशेषकर प्रारंभ में भारत से संरक्षक की जगह पर प्रबंधक नहीं बना लेते, तब तक हम शांति से नहीं बैठेंगे। इसके लिए हमें जो नीतियां बनानी होगी वो बैठकर बनायेंगे। क्योंकि लक्ष्य हमारा स्पष्ट है और उसे पूरा करके ही रहेंगे।

हमारी प्राथमिकताएँ

1. लोक स्वराज
2. अप्रत्याश पर निबंधन की गारंटी
3. श्रम का सम्मान और मूल्य
4. असमानता में कमी
5. समान नागरिक संहिता (UCC)

नई समाज व्यवस्था

(लोक स्वराज)

समानता • न्याय • सुरक्षा • समृद्धि • सर्वहित

हमारा मूल मंत्र

व्यक्ति और समाज ही प्राकृतिक इकाइयाँ हैं, सरकार केवल प्रबंधक है, समाज ही स्वामी है।

गाम सभा
परिवार आधारित सहमति से निर्णय

अर्थ पालिका

परिवार
सहमति इकाई
संपत्ति व जिम्मेदारी साझी

न्याय पंचायत

युवा शक्ति
33 वर्ष तक नई दिशा


सुरक्षित समाज


न्याय व्यवस्था


समान अदभर


श्रम का सम्मान


सर्वजन हिताय

अनेकता में एकता – स्वशासन + अनुशासन + शासन

1 ग्राम पंचायत से न्याय व्यवस्था की शुरुआत

सुप्रीम कोर्ट ने इस विषय पर बहुत चिंता व्यक्त की है कि मुकदमों की बढ़ती हुई संख्या बहुत अधिक हो गई है। न्यायपालिका में स्टाफ की कमी है। मैं भी मानता हूँ कि न्यायपालिका में स्टाफ की कमी है, लेकिन मैं यह नहीं मानता कि न्यायपालिका के पास मुकदमों की संख्या बढ़ाने में न्यायपालिका की गलती नहीं है। मेरे विचार से न्यायपालिका ने अनावश्यक मुकदमों की बाढ़ पैदा की है। जनहित याचिकाएँ न्यायपालिका को नहीं सुनना चाहिए। अन्य अनेक मामले जो न्यायपालिका के दायित्व में नहीं आते, वे मामले न्यायपालिका बेकार सुनती है। कार्यपालिका और विधायिका के सारे कार्य न्यायपालिका ले लेती है, यह पूरी तरह गलत है। हम नई व्यवस्था में

मुकदमों की संख्या बहुत कम कर देंगे। सारे मामले या तो ग्राम पंचायत में निपटाए जाएंगे अथवा ग्राम पंचायत की अपील जिला पंचायत में होगी। कोई भी अपराध यदि ग्राम सभा निपटा देता है तो ग्राम सभाओं को अधिकार दिया जाएगा। आपस में मिलकर कोई भी मामला निपटाया जा सकता है। चाहे वह यदि पुलिस का भी मामला हो तो पुलिस और संबंधित पक्ष आपस में बैठकर निपट सकते हैं। नई व्यवस्था में किसी भी एफआईआर के पहले पुलिस सच्चाई की जाँच करेगी और उसके बाद ही मुकदमा दर्ज करेगी। नई समाज व्यवस्था में पुलिस जिसे अपराधी घोषित कर देगी, वह व्यक्ति न्यायालय में अपील कर सकता है और उसे अपने को निर्दोष सिद्ध करना होगा। उसमें पुलिस की भूमिका नहीं रहेगी। इस तरह नई व्यवस्था में मुकदमे कम हो जाएंगे। वर्तमान समय में हम न्याय व्यवस्था में जो पश्चिमी जगत की नकल कर रहे हैं, उसे बंद

करने की जरूरत है। अब हम भारत के लोग अपनी एक नई न्याय व्यवस्था बनाएँगे और दुनिया के सामने आदर्श प्रस्तुत करेंगे।

2 समाज में झूठ बोलने की बढ़ती प्रवृत्ति

मेरे बचपन से लेकर अब तक के अनुभव में यह बात दिखाई देती है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति में झूठ बोलने का प्रतिशत बहुत अधिक बढ़ गया है और यह बढ़ता ही जा रहा है। जिस समय मेरा बचपन था, उस समय झूठ बोलने वालों का प्रतिशत जो था, वह प्रतिशत आज बढ़कर 10-20 गुना तक हो गया है। उस कालखंड में झूठ बोलने वाले की पहचान की जाती थी और ऐसे व्यक्ति के विषय में समाज में चर्चा होती थी। आज सच बोलने वाले की पहचान की जाती है और ऐसे व्यक्ति की समाज में चर्चा होती है। स्पष्ट है कि आम भारतीय उस समय सच बोलता था और आज झूठ बोलने लगा है। इस समस्या का कारण क्या है, इस पर भी मैंने विचार किया है। राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था में कानून की मात्रा जितनी अधिक होती है, उतना ही अधिक समाज में झूठ बोलने वालों का प्रतिशत बढ़ता जाता है, क्योंकि कोई भी कानून जब पालन करने में दिक्कत पैदा होती है, तब व्यक्ति उससे बचने की कोशिश करता है और यही कालखंड झूठ को मजबूरी में बदल देता है। इसलिए मेरा यह विचार है कि यदि झूठ को समाज से कमजोर करना है, लोगों को सच बोलने की आदत डालनी है, तो आप सामाजिक और संवैधानिक कानून कम से कम कर दीजिए। यदि आप शून्य कर दें तो अधिक अच्छा होगा। लेकिन शून्य करना असंभव है, इसलिए न्यूनतम करने का प्रयास करिए। जो कार्य बिना कानून के चल सकता है, उसमें नियम-कानून मत घुसाइए। इस मामले में सामाजिक नियम-कानून भी बहुत नुकसान कर रहे हैं। इसलिए मेरा सरकार से और सामाजिक व्यवस्था से यह निवेदन है कि वह अपने अनावश्यक कानून को हटा ले।

3 राजनीति मुक्त समाज व्यवस्था की कल्पना

हम न कोई नई सामाजिक व्यवस्था बना रहे हैं, न कोई राजनीतिक व्यवस्था बना रहे हैं। हम तो सिर्फ एक कार्य कर रहे हैं कि वर्तमान समय में हर व्यक्ति सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं के दबाव में दबा हुआ है। उसकी अपनी स्वतंत्र शक्ति सामने आ नहीं पा रही है। यही कारण है कि वर्तमान समय में हम दुनिया से पीछे चल रहे हैं, क्योंकि हमारी प्रतिभा सामने नहीं आ पा रही। वैचारिक धरातल पर हम दुनिया पर आश्रित हो गए हैं। इसलिए मेरा यह मानना है कि सामाजिक और राजनीतिक नियमों-कानूनों के बंधन से हमें कुछ स्वतंत्रता मिले। यही मानकर हम एक राजनीति-मुक्त समाज व्यवस्था की कल्पना कर

रहे हैं, जिसमें सरकार सिर्फ सुरक्षा और न्याय के लिए रहेगी, बाकी सरकार का कोई दखल नहीं होगा। समाज भी परिवारों की सहमति से ही कोई निर्णय कर सकेगा। समाज ऊपर से मनमाने निर्णय नहीं बना सकेगा। इस तरह हम समाज व्यवस्था और राजनीतिक व्यवस्था से मुक्त परिवार व्यवस्था की कल्पना कर रहे हैं। हर आदमी किसी भी धर्म ग्रंथ को मानने के लिए स्वतंत्र है। हर परिवार का अपना-अपना संविधान होगा। कोई भी व्यक्ति कभी भी परिवार बदल सकता है, इसके लिए किसी की अनुमति की जरूरत नहीं होगी, सिर्फ ऊपर वाली इकाई को सूचना देना ही पर्याप्त होगा। इस तरह हम अधिकतम स्वतंत्रता और सहजीवन की मजबूरी का तालमेल बना रहे हैं।

4 बेरोजगारी का आकलन श्रम मूल्य के साथ ही

दुनिया में अनेक गलत परिभाषाएँ बनी हुई हैं और उन परिभाषाओं के आधार को दुनिया सच मानकर चल रही है, जबकि यह गलत परिभाषाएँ ही समस्याओं को बढ़ाती हैं। ऐसी ही एक परिभाषा पढ़ी हुई है बेरोजगारी की। बेरोजगारी एक सापेक्ष शब्द है, निरपेक्ष शब्द नहीं। हर इकाई, चाहे वह परिवार हो अथवा देश, अपने-अपने परिस्थितियों के अनुसार बेरोजगारी का आकलन करते हैं और वही बेरोजगारी की सही परिभाषा होती है। बेरोजगारी दूर करना किसी इकाई का दायित्व नहीं होता है, सिर्फ कर्तव्य होता है, लेकिन दुर्भाग्य से इसे दायित्व समझ लिया जाता है। बेरोजगारी में गुजारा भत्ता दिया जाता है, वह गुजारा भत्ता भी प्राप्तकर्ता का अधिकार नहीं होता, दाता का कर्तव्य होता है। भारत में बेरोजगारी बिल्कुल नहीं है। लोगों का जीवन स्तर बहुत तेजी से ऊपर जा रहा है। आमतौर पर श्रम करने के लिए लोग मिल नहीं रहे हैं, मजदूरी करने वालों का अभाव हो गया है, क्योंकि बौद्धिक स्तर की सुविधा लगातार बढ़ रही है। इसका महत्वपूर्ण कारण यही है कि हमने बेरोजगारी की गलत परिभाषा बनाई है। बेरोजगारी का आकलन श्रम मूल्य के साथ ही होना चाहिए। कोई शिक्षित बेरोजगार होता ही नहीं है। मेरा यह सुझाव है कि भारतीय समाज अब दुनिया की बेरोजगारी की परिभाषा की नकल करना बंद कर दे। अपनी एक आंतरिक परिभाषा बनाकर उस परिभाषा को विकसित करें। यदि वह परिभाषा सफल हो जाएगी, दुनिया अपनी परिभाषा में संशोधन भी कर सकती है। परिभाषा में बदलाव के लिए हमें भारत से पहल करनी चाहिए।

5 संविधान संशोधन में लोक की समान भूमिका

हम एक तरफ व्यवस्था परिवर्तन की माँग कर रहे हैं, दूसरी तरफ हम वर्तमान व्यवस्था में सुधार पर भी चर्चा कर रहे हैं। हमारी व्यवस्था परिवर्तन में सिर्फ एक माँग है कि

वर्तमान सरकार, संसद या तंत्र वर्तमान संविधान संशोधन में लोक की कोई अन्य भूमिका को भी स्वीकार कर ले। इसका मतलब यह है कि संविधान संशोधन का अंतिम अधिकार उस इकाई के पास नहीं होना चाहिए, जो इकाई कानून भी बनाती है, लागू भी करती है। हम चाहते हैं कि संविधान संशोधन में तंत्र के साथ-साथ किसी अन्य इकाई की भी समान भूमिका हो। वह इकाई क्या हो, इस तरह की बात अलग से हो सकती है। तरीका अलग से सोचा जा सकता है, लेकिन हम व्यवस्था परिवर्तन के नाम पर तंत्र से सिर्फ एक बदलाव चाहते हैं और वह है कि संविधान संशोधन में उसकी सहभागी भूमिका हो, अंतिम नहीं। अन्य सभी बातें हम वर्तमान व्यवस्था में सुधार की कर सकते हैं। इसके लिए हम सरकार को सुझाव देते रहते हैं और भविष्य में भी देते रहेंगे। आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सब प्रकार की व्यवस्था में आई कमजोरी पर हम लगातार चिंतन-मंथन कर रहे हैं। हम सुझाव भी दे रहे हैं, हम उस पर जन-जागरण भी कर रहे हैं। लेकिन हम संवैधानिक व्यवस्था परिवर्तन के मामले में सिर्फ एक माँग पर खड़े हुए हैं और वह है—तंत्र-मुक्त, संविधान-युक्त समाज व्यवस्था। स्पष्ट है कि समाज व्यवस्था को तंत्र-मुक्त होना चाहिए और उसका माध्यम है एक स्वतंत्र संविधान।

6 पावर का बंटवारा ही लोक स्वराज का आधार

हम वर्तमान समय में पूरे भारत में देख रहे हैं कि राजनीतिक व्यवस्था में लगभग पूरा भ्रष्टाचार है। सत्ता के दुरुपयोग का भी खतरा है। सामाजिक व्यवस्था में भी भ्रष्टाचार बढ़ रहा है और पावर के दुरुपयोग का भी मामला सामने आ रहा है। यह एक पुराना सिद्धांत है कि जब पावर कहीं इकट्ठा होता है, तो भ्रष्टाचार के अवसर पैदा होते हैं। इस तरह के भ्रष्टाचार पर नियंत्रण करना बहुत कठिन हो जाता है। या तो नियंत्रण की बहुत मजबूत व्यवस्था हो या यह भ्रष्टाचार पैदा ही कम हो। मेरे विचार से हम भ्रष्टाचार पर नियंत्रण की मजबूत व्यवस्था नहीं कर सकते, क्योंकि भ्रष्टाचार ऊपर से नीचे तक फैल चुका है। इसलिए अच्छा होगा कि हम भ्रष्टाचार की उत्पत्ति को ही रोक दें। अर्थात् पावर कहीं इकट्ठा न होने दें। राजसत्ता के पास भी पावर इकट्ठा न हो, समाज सत्ता के पास भी पावर इकट्ठा न हो। परिवार में भी किसी एक व्यक्ति के पास बहुत अधिक पावर इकट्ठा होना घातक है। इसलिए हमें पावर को बाँटना चाहिए। यही वास्तव में लोक स्वराज है, यही आदर्श लोकतंत्र है, यही हमारी आदर्श समाज व्यवस्था है। यही कारण है कि हम लोग लगातार सत्ता के विकेंद्रीकरण के पक्ष में आवाज उठा रहे हैं और यह विकेंद्रीकरण राज्य से लेकर समाज और समाज से लेकर परिवार तक होना चाहिए।

7 व्यवस्था परिवर्तन का अर्थ नई व्यवस्था नहीं

वर्तमान समय में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक समस्याएँ इतनी विकृत हो गई हैं कि इन व्यवस्थाओं में सुधार बहुत कठिन कार्य है। यही मानकर हम व्यवस्था परिवर्तन का संदेश दे रहे हैं। एक ऐसी साफ-सुथरी व्यवस्था, जिसमें धार्मिक, संवैधानिक, आर्थिक, सामाजिक, सब प्रकार की वर्तमान समस्याओं से मुक्त हो। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम कोई नई व्यवस्था दे रहे हैं। वर्तमान व्यवस्था में जो गड़बड़ियाँ हैं, उन गड़बड़ियों से मुक्त व्यवस्था को ही हम नई व्यवस्था मान रहे हैं। व्यवस्था परिवर्तन का मतलब कोई नई व्यवस्था नहीं है, बल्कि वर्तमान व्यवस्थाओं का सुधरा हुआ स्वरूप है। हम वर्तमान विकृत लोकतंत्र की जगह लोक स्वराज का संदेश दे रहे हैं। हम वर्तमान विकृत वर्ण व्यवस्था की जगह एक सुधरी हुई वर्ण व्यवस्था का प्रस्ताव दे रहे हैं। इस सुधरी हुई वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—यह चार नाम सिर्फ बदले गए हैं। हमने मार्गदर्शक, रक्षक, पालक और सेवक कर दिया है। शेष सब वही है। हमने कुछ भी नहीं बदला है। जो पुरानी व्यवस्था थी, वही व्यवस्था रहेगी, लेकिन सिर्फ एक बदलाव होगा कि जन्म के अनुसार वर्ण नहीं, कर्म और योग्यता के अनुसार वर्ण और जातियाँ बनेंगी। बस यह छोटा-सा बदलाव हम कर रहे हैं। हम उम्मीद करते हैं कि मार्गदर्शक, रक्षक, पालक, सेवक नाम आपको पसंद आएँगे। आप हमारे इस व्यवस्था परिवर्तन अभियान से जुड़कर इसे आगे बढ़ा सकते हैं।

8 आत्महत्या को अपराध मानने पर पुनर्विचार

हम देश में बढ़ती आत्महत्याओं से चिंतित हैं। आत्महत्याओं के बढ़ने का कारण क्या है, उस पर भी हम लगातार सोच रहे हैं। एक कारण तो यह है कि लोगों की अपेक्षाएँ बढ़ रही हैं और उन बढ़ती हुई अपेक्षाओं की पूर्ति नहीं होने के कारण आत्महत्याएँ बढ़ रही हैं, लेकिन यह कारण उतना बड़ा नहीं है, जितना बड़ा कारण सरकारी कानून का है। आत्महत्याओं को जितना अधिक हाईलाइट किया जा रहा है, वह आत्महत्याओं के बढ़ने में एक कारण है। आत्महत्या करना किसी भी तरह से न तो अपराध होना चाहिए और न आत्महत्या को प्रोत्साहित करना अपराध होना चाहिए। आत्महत्याओं के कारण जिस तरह लोगों को परेशान होना पड़ता है, वह सब आत्महत्याओं के बढ़ने के महत्वपूर्ण कारण बन रहे हैं। आत्महत्याओं को मीडिया में भी बहुत ज्यादा कवरेज मिलती है। मेरे विचार से आत्महत्याओं को सूचना की तरह ही मीडिया में जाना चाहिए, न कि उसे एक महत्वपूर्ण समस्या के रूप में। अब सर्वोच्च न्यायालय भी आत्महत्या पर चिंता कर रहा है,

जबकि यह सर्वोच्च न्यायालय का भी काम नहीं है। मेरा यह मत है कि नई समाज व्यवस्था में आत्महत्याओं को

एक स्वाभाविक प्रक्रिया मानकर उनको नेगलेक्ट किया जाएगा। किसी भी रूप में हम उसको हाईलाइट नहीं करेंगे।

मुनि जी के विविध विषयों पर लेख

1 मीडिया की भूमिका और राजनीतिक समीकरणों पर उठते सवाल

हम भारत की वर्तमान राजनीति में सत्ता पक्ष और विपक्ष की अलग-अलग समीक्षा कर रहे हैं। कुछ वर्ष पहले यह प्रश्न उठता था कि नरेंद्र मोदी के बाद कौन? सत्ता पक्ष में नरेंद्र मोदी के बाद कोई दिखता नहीं था। कभी-कभी एक-दो आवाज़ गडकरी जी के नाम पर उठ जाया करती थी, लेकिन वह आवाज़ भी बहुत कमजोर थी। लेकिन वर्तमान समय में यह बात दिखने लगी है कि नरेंद्र मोदी के बाद कम से कम तीन लोग तो लाइन में खड़े हैं। उनमें योगी आदित्यनाथ, नितिन गडकरी और अमित शाह—इन तीनों पर अभी सोचा जा सकता है। इन तीनों में भी योगी आदित्यनाथ की गति बहुत तेज है। जिस तरह योगी आदित्यनाथ ने उत्तर प्रदेश जैसे राज्य को पूरी तरह सुधार दिया, यह एक अप्रत्याशित घटना ही मानी जाएगी। अभी तीन-चार दिन पहले ही जो घटना घटी, उसमें एक-दो दिनों के अंदर ही अपराधियों में से दो को गोली मार दी गई। योगी आदित्यनाथ ऑन द स्पॉट तुरंत सज़ा दे रहे हैं, न कहीं गवाही, न कहीं न्यायालय, न कहीं थाना-पुलिस, सारे निर्णय तत्काल हो रहे हैं। नोएडा में कुछ मजदूर नेताओं ने जो उपद्रव किया था, वह भी अब कभी जीवन भर उपद्रव का नाम नहीं लेंगे। संविधान और कानून भी योगी आदित्यनाथ की आँख बंद करके मदद कर रहे हैं। यह बात आश्चर्यजनक है। अमित शाह ने भी जिस तरह भारत से विदेशी मुसलमान को निकलना शुरू किया है, वह कोई साधारण कार्य नहीं है। अवश्य ही अमित शाह की भी प्रशंसा होनी चाहिए। कश्मीर को शांत करने और भारत को नक्सलवाद-मुक्त करने में अमित शाह बहुत आगे रहे हैं। गडकरी जी भी पूरी तरह इथेनॉल नीति में सफल हैं। गडकरी जी का अपना मंत्रालय और साथ-साथ ऊर्जा मंत्रालय में भी बहुत बड़ा योगदान है। इस तरह हम कह सकते हैं कि भारत की राजनीतिक व्यवस्था में सत्तादल बहुत लोकतांत्रिक तरीके से आगे बढ़ रहा है। नरेंद्र मोदी के बाद कौन, इसका अंतिम निर्णय तो मोहन भागवत जी करेंगे, लेकिन सत्तारूढ़ दल में नरेंद्र मोदी के विकल्प के रूप में कोई कमी नहीं दिख रही है।

मैंने लिखा था कि किस तरह सत्तारूढ़ दल में प्रधानमंत्री पद के योग्य लोग एक साथ मिलकर आपस में सलाह करके सरकार चला रहे हैं। कहीं कोई टकराव नहीं है। मीडिया कभी-कभी टकराव पैदा करने की कोशिश भी करता है, लेकिन इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। आपने

सुना होगा कि 6 महीने पहले ही 19 तारीख को प्रधानमंत्री को हटाने और नितिन गडकरी को बनाने का कांग्रेस पार्टी ने ऐलान कर दिया था, लेकिन इसके बाद भी कहीं कोई असर नहीं पड़ा। अब आप देखिए कि विपक्ष का क्या हाल है। विपक्ष में राहुल गांधी नरेंद्र मोदी का विरोध नहीं कर रहे हैं, बल्कि अरविंद केजरीवाल का विरोध कर रहे हैं। राहुल ने पहले नीतीश कुमार को किनारे किया, अब ममता बनर्जी को भी किनारे किया, अब सीधी लड़ाई उनकी अरविंद केजरीवाल से शुरू हुई है। यहाँ तक कि अरविंद केजरीवाल ने यहाँ तक घोषणा कर दी है कि राहुल नरेंद्र मोदी के साथ मिलकर उनके खिलाफ योजना बना रहे हैं। आश्चर्य हुआ कि एक सर्वे में अभी 90 में से 48% लोगों ने नरेंद्र मोदी को पसंद किया और 42% ने विपक्ष को। विपक्ष में 27 वोट राहुल गांधी को मिले और नौ तमिलनाडु के मुख्यमंत्री विजय को, लेकिन कांग्रेस पार्टी ने यह घोषणा कर दी कि विजय यदि प्रधानमंत्री की दौड़ में शामिल होंगे तो हम विजय का विरोध करेंगे, क्योंकि प्रधानमंत्री के लिए तो एकमात्र राहुल गांधी हो सकते हैं। यदि दूसरा कोई अन्य विपक्ष में प्रधानमंत्री बनना चाहेगा, पहले उसी से निपट लिया जाएगा, नरेंद्र मोदी से बाद में देख लिया जाएगा। विपक्ष का हाल है—रुई न सूत, जुलाहे में लट्ट-लट्टा। वैसे राहुल गांधी को 27 वोट मिलना संभव नहीं था, लेकिन अरविंद केजरीवाल की बात में दम है कि कहीं सत्ता पक्ष ही राहुल गांधी को इसलिए आगे नहीं बढ़ा रहा है कि अन्य कोई टक्कर में सामने न आ जाए। ऐसा संदेह इसलिए भी होता है कि वर्तमान समय में मीडिया एक तरफा राहुल गांधी को आगे बढ़ा रहा है और मीडिया पर सत्ता की मजबूत पकड़ है। राजनीति में कुछ भी संभव है।

2 महिला सशक्तिकरण के साथ निष्पक्षता भी जरूरी

कल की दो महत्वपूर्ण घटनाओं पर मैंने एक साथ चिंतन किया। एक रामानुजगंज की घटना है, जहाँ एक सरकारी कर्मचारी की 2 महीने पहले झारखंड में एक एक्सीडेंट में मृत्यु हो गई। उसकी शादी को 11 वर्ष हो गए थे, उसके तीन बच्चे थे, उसकी पत्नी भी साथ रहती थी, लेकिन उसके घर में एक किराएदार भी रहने लगा था। वह मुसलमान था। धीरे-धीरे उस सरकारी कर्मचारी की पत्नी और किराएदार के कुछ शारीरिक संबंध बनने लगे। उसकी पत्नी ने ₹1,00,000 खर्च करके अपने पति को झारखंड में प्रेमी के माध्यम से एक्सीडेंट में मरवा दिया। उसकी पत्नी ने पति के मरने पर बहुत तरह का नाटक भी किया, लेकिन

झारखंड पुलिस ने तकनीकी माध्यम से खोज कर उसकी पत्नी और हत्या करने में शामिल पाँच मुसलमानों को गिरफ्तार कर लिया है। एक दूसरी घटना सोचिए कि एक मैनपुरी की लड़की अपनी माँ से विवाद करके घर से निकल जाती है। वह किसी तरह नोएडा पहुँच जाती है, परी चौक पर अनजान जगह पर उतर भी जाती है। रात में खड़ी रहती है, एक बस को रोककर और उसमें कंडक्टर से बात करके बैठ जाती है। बस पूरी तरह खाली है। कंडक्टर और उस लड़की के बीच क्या बात होती है, यह बात अब तक सामने नहीं आई है, लेकिन 47 किलोमीटर जाकर या तो उस लड़की को उतार दिया जाता है या वह उतर जाती है। अब वह लड़की थाने चली जाती है। कंडक्टर और ड्राइवर पर बलात्कार का आरोप लगाती है। यह दोनों घटनाएँ एक साथ कल प्रकाश में आई हैं, लेकिन भारत के सभी मीडिया संस्थानों ने उस नोएडा वाली घटना को कितना ज्यादा उछाला, जैसे निर्भया कांड हो गया हो। अनेक महिला संगठन भी कूद पड़े, पुलिस भी सावधान हो गई, सरकार भी बहुत सतर्क है। एक महिला के साथ इतना बड़ा अत्याचार, जबकि अब तक यह बात सामने नहीं आई है कि ड्राइवर और कंडक्टर का पक्ष क्या है, क्या दोनों के बीच कोई बातचीत हुई थी। मैं मानता हूँ कि दोनों के बीच शारीरिक संबंध बने होंगे, लेकिन अभी यह बात कैसे मान ली जाए कि महिला ने धोखेबाजी नहीं की होगी। सबसे बड़ी बात यह है कि रामानुजगंज की घटना देशभर में कहीं प्रकाश में नहीं आई है और नोएडा की घटना विदेशी मीडिया तक में हाईलाइट हो गई है, जबकि रामानुजगंज की घटना सिद्ध है और नोएडा की घटना की जाँच चल रही है। यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि हम महिला सशक्तिकरण के नाम पर समाज को किधर ले जा रहे हैं। महिलाएँ सच ही बोलती हैं, इस तरह की धारणा अब छोड़ देनी चाहिए। महिला और पुरुष का भेद समाप्त करिए, सबको समान मनुष्य मानिए। पुरुष यदि बलात्कार में बहुत आगे हैं, तो महिलाएँ भी ब्लैकमेलिंग में उनसे पीछे नहीं हैं।

3 भविष्यवाणियों के बजाय तर्क और विज्ञान पर विश्वास

किसी विदेशी ने यह भविष्यवाणी की है कि नवंबर की किसी तारीख को प्रलय आ जाएगा। किसी एक व्यक्ति ने यह भी भविष्यवाणी की है कि अगले 17 वर्षों के बाद यह दुनिया खत्म हो जाएगी। किसी पेशेवर व्यक्ति द्वारा लगातार बाबा बंगा के नाम पर भविष्यवाणी की जाती है। कोई नस्त्रेदमस के नाम पर अपनी दुकान चला रहा है। अन्य भी भविष्यवाणियों के नाम पर अनेक पेशेवर लोग पूरे भारत में सक्रिय हैं। और मीडिया इन सब दुकानदारों के साथ मिलकर अपनी भी दुकानदारी चलाता रहता है। मेरा अपना मानना है कि कोई भी इस तरह की भविष्यवाणी संभव नहीं है, जो गणित के आधार पर न हो अथवा तर्क के

आधार पर न हो या विज्ञान के आधार पर न हो। यह ग्रह, राशि या अन्य किसी भी प्रकार की अतार्किक भविष्यवाणियों का कोई प्रभाव नहीं होता है। यही कारण है कि मैं भविष्यवाणियों से बचता हूँ और विश्वास भी नहीं करता। फिर भी मेरा यह मानना है कि हम समाज के सामने आने वाली समस्याओं के कारण और समाधान प्रस्तुत करें। यदि हम समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करेंगे, तब लोग इस प्रकार के भविष्यवाक्ताओं से दूर होना शुरू हो जाएंगे और धीरे-धीरे आप पर लोगों का विश्वास बढ़ेगा। मेरा यह मानना है कि हम बार-बार गलतियों के खिलाफ लोगों को सावधान करने की तुलना में उन गलतियों का एक समाधान दे दें। दूध में मिलावट हो रही है, इस बात की चिंता करना उतना अधिक उपयोगी नहीं है, जितना यह है कि हम शुद्ध दूध का प्रचार करें और शुद्ध दूध उपलब्ध कराएँ। निकम्मे लोग वर्तमान बुराइयों की ही चर्चा करते हैं, उनका समाधान नहीं बताते। मेरा हम सब साथियों से निवेदन है कि हम बुराइयों की चर्चा न करके समाधान पर अधिक चर्चा करें।

4 महिला-पुरुष संबंधों पर बदलती सोच की आवश्यकता

स्वरा भास्कर एक आधुनिक मान्यताओं की महिला मानी जाती हैं। वह धर्म, जाति अथवा अन्य किसी भी रूढ़िवाद पर विश्वास नहीं करतीं। वह 'मेरा शरीर, मेरी मर्जी' पर विश्वास करती हैं। उन्होंने कल युद्ध में पराजित राजपूत की महिलाओं के जौहर की आलोचना करते हुए दो बातें कहीं। पहली बात कि महिलाओं को बलात्कार से नहीं डरना चाहिए था। इस विषय पर मैं स्वरा से सहमत हूँ। बलात्कार को हम अनावश्यक ज्यादा तूल देते हैं, क्योंकि पुराने जमाने में योनि शुचिता का महत्व बहुत अधिक था और वर्तमान समय में योनि स्वतंत्रता का महत्व है। महिलाओं को अब समान अधिकार देने ही होंगे। यदि महिला और पुरुष के बीच दूरी घटेगी, तो बलात्कार भी बढ़ सकते हैं और कुछ अन्य अपराध भी बढ़ सकते हैं। अब देह व्यापार को आप किसी कानून से नहीं रोक सकते। 'मेरा शरीर, मेरी मर्जी'—इसे देर-सवेर स्वीकृति देनी ही होगी। इसलिए मेरा भी सुझाव है कि हम महिला और पुरुष के संबंधों में वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर अपनी सोच में बदलाव लाएँ। स्वरा ने एक दूसरी बात कही कि जौहर नहीं करना चाहिए था। मेरे विचार से इस मामले में स्वरा गलत हैं। महिलाओं ने बलात्कार के डर से जौहर नहीं किया था, गुलामी के डर से किया था। उस समय गुलाम पुरुषों को महिलाओं से बलात्कार का खतरा नहीं था, बल्कि अपने घर में पत्नी बनाकर रखने का खतरा था और यह खतरा बहुत बड़ा था। ऐसी स्थिति में जौहर की आलोचना नहीं की जा सकती है। मेरे विचार से स्वरा को अपने कथन पर दोबारा विचार करना चाहिए और समाज

को भी महिलाओं के संबंध में नए सिरे से सोचना चाहिए।

5 तकनीक, न्याय और स्वतंत्रता के बीच संतुलन

वर्तमान समय में भारत की संपूर्ण राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था का मुख्य संचालन नरेंद्र मोदी और मोहन भागवत मिलकर कर रहे हैं। हमारी तीन प्राथमिकताएँ हैं। हमें दुनिया से प्रतिस्पर्धा करनी है, हमें भारत के लोगों के साथ न्याय करना है, हमें समाज को अधिक से अधिक स्वतंत्रता भी देनी है और ये तीनों काम एक साथ किए जाने जरूरी हैं। तीनों में से कोई एक अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। यही कारण है कि हम इन तीनों के बीच संतुलन बनाकर चल रहे हैं। हमें दुनिया से कंपटीशन करना है। इसके लिए हमें अधिक से अधिक उन्नत तकनीक का विकास करना होगा, क्योंकि दुनिया तकनीक की दिशा में तेज गति से बढ़ रही है और इस मामले में भारत बहुत पीछे है। हमें बहुत तेज गति से तकनीक का विस्तार करना होगा। दूसरी बात है कि हमें आम लोगों को न्याय देने के लिए श्रम का महत्व भी बढ़ाना पड़ेगा। जब तक श्रम का महत्व नहीं बढ़ेगा, तब तक तकनीक और न्याय का संतुलन नहीं हो पाएगा। सबसे नीचे के लोगों के आर्थिक विकास में श्रम की ही सबसे अधिक भूमिका है और श्रम तथा तकनीक एक-दूसरे के विपरीत हैं। इसलिए श्रम और तकनीक का संतुलन हमारी उच्च प्राथमिकता होनी चाहिए। एक तीसरी बात भी है कि हमें समाज को अधिक से अधिक स्वतंत्रता का अनुभव कराना चाहिए। एक जमाना था, जब एकता में अनेकता का नारा बुलंद किया जाता था। अब हम नई समाज व्यवस्था में अनेकता में एकता का नारा बुलंद करना चाहते हैं। इस तरह हमारी वर्तमान सरकार और समाज व्यवस्था एक संतुलन बनाकर कार्य कर रही है। हम भौतिक प्रगति, अधिकतम न्याय और स्वतंत्रता का संतुलन बनाकर वर्तमान समाज के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं। हमें भौतिक स्तर पर दुनिया से कंपटीशन करना है, हमें स्थानीय स्तर पर श्रम के साथ न्याय करना है और हमें सामाजिक स्तर पर समाज को अधिक शक्तिशाली बनाना है। इन तीनों कार्यों में नरेंद्र मोदी, मोहन भागवत, गांधीवादी, आचार्यकुल, आर्य समाज, गायत्री परिवार, माँ संस्थान आदि लगातार सक्रिय हैं। दूसरी तरफ हमारी सारी योजना को असफल करने के लिए साम्यवादी, कट्टरवादी मुसलमान, नेहरू परिवार तथा कुछ अन्य विपक्षी नेता भी दिन-रात एक किए हुए हैं। आप गंभीरता से सोचिए कि हम तकनीक का अधिक से अधिक उपयोग करना चाहते हैं, हम तेज गति की रेलगाड़ियाँ चलाना चाहते हैं। दूसरी ओर हमारे विपक्ष के नेता यह आवाज उठाते हैं कि हमें अपनी स्थानीय व्यवस्था का सुधार करना है, हमें तेज रेलगाड़ियों की जगह वर्तमान रेलगाड़ियों की हालत सुधारनी है। हम

तेज गति से उत्पादन बढ़ाना चाहते हैं, तो विपक्ष के नेता पर्यावरण, मानवाधिकार अथवा अन्य किसी न किसी आधार पर हमारे उत्पादन में बाधा पैदा करना चाहते हैं। वे उत्पादन की जगह न्यायसंगत वितरण को अधिक आवश्यक मानते हैं। हम बहुत तेज गति से डीजल-पेट्रोल का मूल्य बढ़ाकर श्रम के साथ न्याय करना चाहते हैं, तो हमारे विपक्षी नेता डीजल-पेट्रोल की मूल्य वृद्धि के मामले में अपनी जान देने के लिए तैयार हो जाते हैं। हम सामाजिक एकता के पक्षधर हैं, तो हमारे विपक्षी नेता वर्ग संघर्ष बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे हैं। आप देखिए कि पिछले एक वर्ष में ही विपक्ष ने महिलाओं के नाम पर, दलितों के नाम पर, युवाओं के नाम पर कितने नए-नए वर्ग संघर्ष खड़े कर दिए। परिणाम हुआ कि हमारी सामाजिक एकता लगातार टूटती जा रही है। सौभाग्य है कि भारत की जनता अब इन विपक्षियों को अच्छी तरह समझने लग गई है और धीरे-धीरे उनकी ताकत कमजोर हो रही है, लेकिन वे मरते तक अपने मार्ग बदलने के लिए तैयार नहीं हैं। वर्ग संघर्ष एक तरह से उनके खून में समा गया है और वे वर्ग संघर्ष को ही सबसे सफल आधार मान रहे हैं। अब जल्दी ही विपक्ष-मुक्त भारत बनाने का समय आ गया है, जिससे हम तेज गति से अपने कार्य को आगे बढ़ा सकें।

6 एकता में अनेकता से अनेकता में एकता की ओर

हम अब तक जिस शासन व्यवस्था में चल रहे हैं, उसमें केंद्रीकरण अधिक महत्वपूर्ण है। सत्ता ऊपर से नीचे आती है, व्यवस्था भी ऊपर से नीचे आती है। एकता में अनेकता का संदेश दिया जाता है। यह माना जाता है कि हम हर मामले में एकजुट रहेंगे और एकजुट होकर जो निर्णय देंगे, वह नीचे वालों की स्वतंत्रता की सीमा होगी। इसे एकता में अनेकता कहा गया है। लेकिन हम लोग इस व्यवस्था में बदलाव चाहते हैं। हम चाहते हैं कि अनेकता में एकता हिंदू की विशेषता है। हिंदुओं ने कभी एकता में अनेकता नहीं देखी, बल्कि अनेकता में एकता देखी है। इसका मतलब यह है कि सभी इकाइयाँ अपने-अपने तरीके से कार्य करने के लिए स्वतंत्र होंगी और वे सब मिलकर एक निर्णय करेंगी। जो निर्णय करेंगी, वह निर्णय सब पर लागू होगा, लेकिन निर्णय करने वाली सभी इकाइयाँ अपनी-अपनी स्वतंत्रता से निर्णय करेंगी। कोई निर्णय किसी पर बिना सहमति के थोपा नहीं जाएगा। इस तरह हम इस्लाम या साम्यवादी संस्कृति से भिन्न संतुलनवादी हिंदुत्व की संस्कृति के पक्षधर हैं। हम प्रत्येक इकाई को अधिकतम स्वतंत्रता देना चाहते हैं और ऐसी सभी इकाइयाँ एक साथ मिलकर ऊपर की इकाई बना सकती हैं, जिसका निर्णय सब मानेंगे। इस तरह हम स्वतंत्रता और सहजीवन का तालमेल देखना चाहते हैं। हम वर्तमान समय में इसी प्रयोग को आगे बढ़ा रहे हैं। मेरा दुनिया से निवेदन है कि वह

अनेकता में एकता की दिशा में आगे बढ़े।

7 मतदाता सूची में सुधार से राजनीति में नई बहस

भारतीय चुनाव आयोग की वर्तमान मतदाता सूची पर दिल्ली के पूर्व मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल ने व्यंग्य किया है। उनके अनुसार अब तो देश की आबादी भी बहुत घट जाएगी, क्योंकि जिस तरह मतदाता सूची से नाम निकल गए हैं, उसकी आबादी पर भी प्रभाव पड़ेगा। यह वास्तव में व्यंग्य ही है, क्योंकि आबादी और मतदाता सूची में बहुत मामूली-सा संबंध हो सकता है, बहुत बड़ा नहीं। लेकिन यह बात सच है कि जो मतदाता सूची अब बनी है, वह बहुत साफ है। अभी दिल्ली की मतदाता सूची का अंतिम रूप नहीं दिया गया है, लेकिन जहाँ-जहाँ नई मतदाता सूची पर चुनाव हुए हैं, वे सब चुनाव बहुत ही अधिक विश्वसनीय माने जाते हैं। आज पूर्व चुनाव आयुक्त कुरैशी ने भी यह बात साफ की कि इसके पहले की जो मतदाता सूचियाँ थीं, उन पर होने वाले चुनाव संदिग्ध भी माने जा सकते हैं, क्योंकि या तो यह मतदाता सूची सही है या पिछली सही है, दोनों तो सही हो नहीं सकतीं। मेरे भी विचार में जो पिछले चुनाव पहले की मतदाता सूची पर हुए थे, वे सच में विश्वसनीय नहीं थे। लेकिन यह एक गंभीर प्रश्न है कि इस नई मतदाता सूची में नाम हटाने वालों की अधिकांश संख्या मुसलमानों की है। इसका मतलब यह है कि पिछली सरकारों ने जानबूझकर षड्यंत्र करके मुसलमानों के नाम जोड़े थे और यही कारण था कि पिछली सरकारें हमेशा मुसलमानों को अधिक सुविधाएँ और अधिक महत्व देती थीं, क्योंकि मुसलमान और विपक्ष की सरकारें एक-दूसरे की पूरक थीं। यह सही है कि अब नई मतदाता सूची बनने से मुसलमानों को भी कष्ट हो रहा है और विपक्ष को भी कष्ट हो रहा है, लेकिन इस पवित्र कार्य के लिए ज्ञानेश कुमार बधाई के पात्र हैं कि उन्होंने भारत की चुनाव प्रणाली की एक बहुत बड़ी बीमारी से देश को बचा लिया है।

8 प्रश्न पूछने वालों की जिम्मेदारी कौन तय करेगा?

कल दिल्ली में एक दुर्घटना हुई, जिसमें एक मकान मालिक की लापरवाही से एक बड़ा मकान गिर गया और उसमें सात बच्चे मर गए, एक-दो और भी संख्या बढ़ सकती है। वहीं दिल्ली में कल दो-तीन ऐसी हत्याएँ हुईं, जिनमें किसी की कोई गलती नहीं थी, बल्कि पूरी तरह अपराधी घटनाएँ थीं। लेकिन आश्चर्य है कि मकान गिरने की घटना को देश भर में अधिक हाईलाइट किया गया, हत्याओं को नेगलेक्ट किया गया। मकान गिरने की घटना के मामले में सारा मीडिया दिनभर व्यस्त रहा। यह दुर्घटना नहीं, हत्या है। इसमें मकान मालिक को गंभीर से गंभीर दंडित होना चाहिए। उच्च न्यायालय भी तुरंत हरकत में आ

गया, उसने भी कई तरह के सवाल खड़े किए। सरकार के सभी विभाग सक्रिय हो गए। प्रधानमंत्री ने भी दुर्घटना पर दुःख व्यक्त किया। छात्र नेताओं ने भी इस घटना को बहुत गंभीर माना। राहुल गांधी ने भी कई प्रश्न पूछे। अगर प्रश्न पूछने वालों की कुल संख्या जोड़ी जाए, ऐसा लगता है कि हर बेकार आदमी प्रश्न पूछने के लिए तैयार बैठा है, उत्तर देने वाला कोई नहीं है। सब लोग प्रश्न पूछकर अपना नाम मीडिया में जुड़वाना चाहते हैं कि वह सक्रियता में पीछे नहीं है। दूसरी ओर हत्याओं पर कोई प्रश्न पूछने वाला नहीं है, जबकि हत्याएँ अपराध हैं, दुर्घटनाएँ लापरवाही हैं। ऐसा लगता है कि भारत में कुछ अक्रमण्य लोगों की एक फौज तैयार हो गई है, जो केवल प्रश्न पूछना जानती है, उत्तर देना नहीं। सरकार ने भी आनन-फानन में कुछ लोगों को जेल में बंद कर दिया, कुछ सरकारी अधिकारियों को सस्पेंड कर दिया। ऐसा लगता है जैसे भविष्य में ऐसी घटनाएँ कम हो जाएँगी। लेकिन इस तरह की दुर्घटनाएँ देखें तो हमें 70 वर्ष बीत गए हैं। प्रश्न खड़ा होता है कि सरकार की जिम्मेदारी हत्याओं को रोकना है या दुर्घटनाओं को रोकना? प्रश्न पूछने वाले उत्तर देने की कोशिश क्यों नहीं करते? क्या मीडिया की कोई जिम्मेदारी नहीं है? क्या मीडिया 10 दिन पहले सूचना नहीं दे सकता था? क्या प्रश्न पूछने वाले नेताओं की कोई उत्तरदायित्व नहीं है? अब समाज के लिए यह उचित है कि वह इन प्रश्न पूछने वालों से प्रश्न पूछे कि आपकी जिम्मेदारी क्या है?

9 विकृत लोकतंत्र में सत्ता पक्ष और विपक्ष का विभाजन

भारत में विकृत लोकतंत्र है। विकृत लोकतंत्र में सत्ता पक्ष और विपक्ष का होना अनिवार्य माना जाता है। विकृत लोकतंत्र में दोनों मिलकर देश की व्यवस्था को नहीं संभालते हैं, बल्कि विपक्ष का काम है प्रश्न पूछना और सत्ता पक्ष का काम है उत्तर देना। लेकिन जब लोकतंत्र में विपक्ष बहुत कमजोर हो जाता है, तो सत्ता पक्ष में से ही एक नया विपक्ष बनने लगता है। ऐसा ही वर्तमान समय में भारत में हो रहा है। जब विपक्ष बहुत कमजोर होने लगा, तो सत्ता पक्ष में से ही कट्टरवादियों और संतुलनवादियों के बीच विभाजन शुरू हुआ। कट्टरवादी हिंदुओं ने एक नया विपक्ष बनाना शुरू किया और वह विपक्ष यूजीसी के बाद खुलकर आकार लेने लगा है। दोनों के बीच साफ फर्क दिख रहा है। नया विपक्ष कट्टरवादी है, उग्रवादी है, हिंसा समर्थक है, संवैधानिक तरीके से संविधान संशोधन का पक्षधर नहीं है, हिंदू राष्ट्र बनाना चाहता है, समाज सर्वोच्च की जगह राष्ट्र सर्वोच्च मानता है। दूसरी ओर वर्तमान सत्ता पक्ष संतुलनवादी है, सारी दुनिया को साथ लेकर चलना चाहता है, धर्मनिरपेक्ष है, संविधान में संशोधन संवैधानिक तरीके से ही करना चाहता है, कानून पर विश्वास करता है,

ऐसा मानता है कि भारत तो हिंदू राष्ट्र बन चुका है, अब उसे कुछ बनाने की जरूरत नहीं है। अब नया विपक्ष यदि खड़ा होता है, तो इसका राजनीतिक परिणाम क्या होगा, यह तो अभी बताना संभव नहीं है। हो सकता है कि विपक्ष पूरी तरह खत्म हो जाए, हो सकता है कि तीसरा पक्ष ही खत्म हो जाए। लेकिन एक बात स्पष्ट है कि हम लोग संतुलनवादी हिंदुत्व के पक्षधर हैं। न तो हम वर्तमान तिकड़ी वाले विपक्ष के साथ हैं और न हम उग्रवादी हिंदुओं के विपक्ष के साथ हैं। हमारी नीति स्पष्ट है। नरेंद्र मोदी, मोहन भागवत और योगी आदित्यनाथ मिलकर जो निर्णय लेंगे, हम उस निर्णय के साथ खड़े हैं।

10 समान अधिकार और विशेष अधिकार में अंतर

हम कल घटित महिला-पुरुष की घटनाओं पर विचार करें तो एक पति ने अपनी पत्नी की हत्या कर दी, उसे टुकड़े-टुकड़े करके फ्रिज में रख दिया, क्योंकि उसे संदेह था कि उसकी पत्नी किसी अन्य पुरुष के साथ भी संपर्क में है। एक दूसरी घटना में एक बहू ने अपने ससुर की हत्या के लिए दो नौकरों को 6 लाख रुपया देकर अपने अरबपति ससुर की इसलिए हत्या कराई कि ससुर खर्च करने में कंजूसी कर रहा था। एक तीसरी घटना में भी एक महिला ने एक दुकानदार पर यह आरोप लगा दिया कि उस दुकानदार ने अपनी दुकान के पीछे ले जाकर उस महिला के साथ छेड़छाड़ करने की कोशिश की। एक चौथी घटना में फ्रांस में एक स्वामीनारायण संप्रदाय का आयोजन होता है। स्वामीनारायण के लोग उस आयोजन में महिला कर्मचारियों को रखने के पक्षधर नहीं हैं। जिस जगह आयोजन हो रहा था, वहाँ की महिला कर्मचारियों को इस आयोजन से अलग कर दिया गया, तो महिला कर्मचारियों ने इसका विरोध किया और हड़ताल कर दी। समझ में नहीं आ रहा है कि हम भारत के लोग पश्चिम के महिला सशक्तीकरण के नारे का आँख बंद करके समर्थन क्यों कर रहे हैं। बलात्कार के झूठे आरोप क्यों लगाए जा रहे हैं? दलित उत्पीड़न, आदिवासी उत्पीड़न के भी झूठे आरोप अधिक संख्या में लग रहे हैं। न्यायालय से भी जो निर्णय आ रहे हैं, उसमें अधिकांश आरोप झूठे पाए जा रहे हैं। लेकिन इसमें न हमारे समाज व्यवस्था की गलती है, न महिलाओं की, आदिवासियों की, दलितों की गलती है, बल्कि इसमें गलती है कानून बनाने वालों की, क्योंकि उन्होंने ही ऐसा कानून बनाया है कि जो महिलाएँ, आदिवासी, दलित बलात्कार और अत्याचार के आरोप लगाएंगे, उन्हें प्रोत्साहन के लिए सरकार से आर्थिक मदद मिलेगी। एक तरफ उन्हें प्रोत्साहन राशि मिलेगी, दूसरी ओर उनकी ब्लैकमेल करने की ताकत भी बढ़ेगी। आप फ्रांस की घटना पर भी विचार करिए तो पश्चिम से अंधाधुंध महिला सशक्तीकरण की आवाज बहुत घातक है।

महिलाओं को यह तय करना पड़ेगा कि उन्हें समान अधिकार चाहिए अथवा विशेष अधिकार चाहिए। दलित और आदिवासियों को भी यह साफ-साफ घोषणा करनी होगी कि उन्हें समान अधिकार चाहिए या विशेष अधिकार चाहिए। दोनों अधिकार आपको एक साथ नहीं मिल सकते। इसलिए मैं भारत में इस विचार का पक्षधर हूँ कि इस विषय पर अंतिम रूप से विचार कर लिया जाए कि कमजोरों को संविधान और कानून में समान अधिकार चाहिए अथवा विशेष अधिकार।

11 उग्र हिंदुत्व और नरम हिंदुत्व के बीच वैचारिक अंतर

स्वतंत्रता के पहले से ही यह बात साफ हो गई है कि संघ और सावरकर के बीच मुसलमान और कम्युनिस्टों के मामले में एकजुटता थी। दोनों की नीतियाँ लगभग एक समान थीं। लेकिन दोनों के बीच में यह बहुत बड़ा फर्क भी था कि सावरकर कट्टरवादी थे, आक्रामक थे, उग्र हिंदुत्व के पक्षधर थे, गांधी के कट्टर विरोधी थे, जबकि संघ नरम हिंदुत्व और गांधी को प्रातः स्मरणीय मानते थे। फिर भी स्वतंत्रता के बाद दोनों एक साथ मिल-जुलकर काम करते रहे। लेकिन नरेंद्र मोदी के आने के बाद दोनों के विचारों में कुछ दूरियाँ बढ़ने लगीं। पिछले कुछ वर्षों से जब से नरेंद्र मोदी, मोहन भागवत, योगी आदित्यनाथ की सरकार गांधीवाद की दिशा में जा रही है, तब से सावरकरवादी लगातार असंतोष व्यक्त कर रहे हैं। अब उन्होंने यूजीसी के मामले में जिस तरह जल्दबाजी की है, उस जल्दबाजी ने आरक्षण विरोध को संकट में डाल दिया है। हम लोगों ने बहुत प्रयत्न किया था कि इस तरह की मूर्खता घातक होगी, लेकिन यह नासमझ मानने को तैयार ही नहीं हुए और आज परिणाम सबके सामने साफ दिख रहा है। यदि इसी तरह विपक्ष महिलाओं, युवाओं और दलितों को भड़काता रहा, सरकार के सामने यह मजबूरी हो जाएगी कि वह उन्हें संतुष्ट करने के लिए और भी अधिक आगे आए। यदि जरूरत पड़ेगी तो आरक्षण बढ़ाना भी पड़ सकता है। लेकिन हम हिंदुओं में किसी तरह का विभाजन नहीं होने देंगे, चाहे वह महिला हो, युवक हो अथवा दलित-आदिवासी हो। हम किसी भी प्रकार के आरक्षण के पूरी तरह विरुद्ध हैं, लेकिन यह बदलाव संवैधानिक तरीके से ही हो सकता है, किसी आंदोलन के द्वारा नहीं। अब तक जो मूर्खता हो चुकी है, उस पर फिर से विचार करने की जरूरत है।

12 स्वशासन, अनुशासन और शासन का संतुलन

हम प्रत्येक व्यक्ति पर तीन तरह का शासन मानते हैं। पहले है व्यक्ति का अपने ऊपर अपना शासन, दूसरा है परिवार और समाज का अनुशासन और तीसरा है राज्य का

शासन। इस तरह प्रत्येक व्यक्ति स्वशासन, अनुशासन और शासन के बीच चलता रहता है। वर्तमान समय में स्वशासन उद्दंडता में बदलता जा रहा है, क्योंकि उस पर किसी का अनुशासन नहीं है। अनुशासन असफल होता जा रहा है, क्योंकि समाज और राज्य के बीच यदि संतुलन होता, तो हम अनुशासन और शासन दोनों का प्रभाव देख सकते थे, लेकिन राज्य ने समाज को पूरी तरह अधिकारविहीन कर दिया। इसका परिणाम हुआ कि व्यक्ति उद्दंड होता जा रहा है। हम इस बीमारी को अच्छी तरह समझ रहे हैं, क्योंकि हमारा यह मानना है कि इस्लाम, हिंदुत्व और साम्यवाद, ये तीनों इस बीमारी के कारण नहीं हैं। इस बीमारी का कारण है पश्चिम का लोकतंत्र। लोकतंत्र और शेष तीनों व्यवस्थाओं के बीच जो संतुलन होना चाहिए था, वह नहीं है। मैं आपको आसान शब्दों में समझाऊँ कि समाज, परिवार या अन्य सभी इकाइयों को बहिष्कार का अधिकार होना चाहिए। बहिष्कार ही अनुशासन बनाए रख सकता है। दुर्भाग्य से हमारे पश्चिम के लोकतंत्र में बहिष्कार का अधिकार छीन लिया है। हम नई समाज व्यवस्था में बहिष्कार का अधिकार सामाजिक संस्थाओं के पास सुरक्षित रखेंगे। परिवार और समाज को अनुशासन का पूरा अधिकार होना चाहिए और रहेगा। हम इस तरह की समाज और राज्य के बीच एक संतुलित व्यवस्था बनाने के पक्षधर हैं।

13 समय के साथ बदलता मुस्लिम समाज का दृष्टिकोण

समय कब और कैसे बदल जाता है, जिसका यदि सबसे सटीक उदाहरण है भारत के मुसलमान। कोई ज्यादा वर्ष नहीं बीते हैं, जब भारत का मुसलमान भारत को दारुल हरब से दारुल इस्लाम बनाने का सपना देख रहा था। आपको बता दें कि दुनिया में मुसलमान तीन प्रकार की परिस्थितियों में अपना समय बिताते हैं। एक होता है दारुल अमन, एक होता है दारुल हरब और एक होता है दारुल इस्लाम। जहाँ इनकी आबादी 10% से कम होती है, उसे दारुल अमन माना जाता है। वहाँ ये पूरी तरह शांति से रहते हैं, लेकिन अगर इनकी आबादी 10% से 30% के बीच हो जाए, तब ये उसे दारुल हरब मान लेते हैं और यदि इनकी आबादी 30% से ज्यादा हो जाए, तब उसे दारुल इस्लाम मान लिया जाता है। भारत दारुल हरब था और धीरे-धीरे दारुल इस्लाम बनाया जा रहा था। दुनिया के मुसलमानों को भारत में बुला-बुलाकर यहाँ का निवासी और मतदाता बनाया जा रहा था। भारत में भी विशेषकर सेक्स का प्रयोग करके अपनी संख्या बढ़ाने की पूरी-पूरी कोशिश की जा रही थी। राज्य पर भी दबाव बनाकर रखा गया था। राज्य भी उनके इस कार्य में सहायक था। भारत का आम मुसलमान वह दिन याद करता था, जब वह भारत में

शासक था। लेकिन धीरे-धीरे समय बदला और 10 वर्षों में ही इतना बदलाव आ गया है कि भारत का मुसलमान दारुल इस्लाम तो भूल गया, अब दारुल हरब को बचाने की चिंता पैदा हो गई है। विदेशी मुसलमान को धीरे-धीरे भारत से बाहर निकाला जा रहा है। तीन दिन पहले ही छत्तीसगढ़ के बिलासपुर शहर के एक मोहल्ले में 23 विदेशी मुसलमानों को पकड़कर डिटैन किया गया है। भारत में सेक्स का उपयोग करके आबादी बढ़ाने का गुरु मंत्र कमजोर किया जा रहा है। अब तो ऐसा दिखता है कि भारत के मुसलमान को कहीं दारुल अमन की दिशा में बढ़ने को मजबूर न होना पड़े।

14 भूल और अपराध के बीच स्पष्ट अंतर

मैंने अपनी पुरानी भारतीय व्यवस्था में यह एक अच्छाई देखी थी कि उसमें योग्यता अनुसार व्यक्तियों को महत्व दिया जाता था। वर्ण व्यवस्था इस प्रकार बनी हुई थी कि योग्यता, क्षमता और नियत में तालमेल रहता था। जिन्हें भी विशेष अधिकार प्राप्त थे, उन्हें यदि भूल करते थे तो उन्हें अन्य लोगों की तुलना में कम दंड दिया जाता था और यदि वे जानबूझकर कोई अपराध करते थे तो अन्य लोगों की तुलना में अधिक दंड दिया जाता था। मैं इसे एक अच्छी प्रणाली मानता हूँ। पुराने जमाने में मार्गदर्शक, रक्षक, पालक, सेवक वर्ग बने हुए थे। इनमें यदि मार्गदर्शक कोई भूल करता था तो उसे एक दंड होता था और मार्गदर्शक कोई अपराध करता था तो उसे चार गुना दंड होता था, जबकि सेवक अगर भूल करता था तो चार गुना दंड होता था और अपराध करता था तो एक गुना दंड होता था। इस तरह भूल के लिए सेवक को चार और अपराध के मामले में एक दंड था, जबकि मार्गदर्शक को भूल के मामले में एक और अपराध के मामले में चार गुना अधिक दंड दिया जाता था। मैं अब भी समझता हूँ कि यदि किसी को विशेष अधिकार प्राप्त है तो उसे भूल के मामले में माफ किया जा सकता है, अपराध के मामले में कठोर दंड दिया जाना चाहिए। हमारी वर्तमान राजनीतिक और संवैधानिक व्यवस्था भूल और अपराध को अलग-अलग नहीं कर पा रही है। इसके कारण बहुत दिक्कत पैदा हो रही है। हम नई व्यवस्था में भूल और अपराध को बिल्कुल अलग-अलग करके देखेंगे और साथ में विशेष अधिकार प्राप्त लोगों को सामान्य लोगों की तुलना में कुछ विशेष व्यवहार करेंगे। इसका अर्थ यह है कि एक ही प्रकार के अपराध के लिए सेवक को यदि 10 वर्ष का दंड दिया जाता है तो मार्गदर्शक को फाँसी भी दी जा सकती है, लेकिन यदि किसी भूल में सेवक को 10 कोड़े की सजा दी जाती है तो मार्गदर्शक को सिर्फ निंदा करके ही छोड़ा जा सकता है। मेरा यह मानना है कि वर्तमान समय में हम भूल को बहुत गंभीर अपराध बना रहे हैं और वास्तविक अपराधों को छोटा मानकर देख

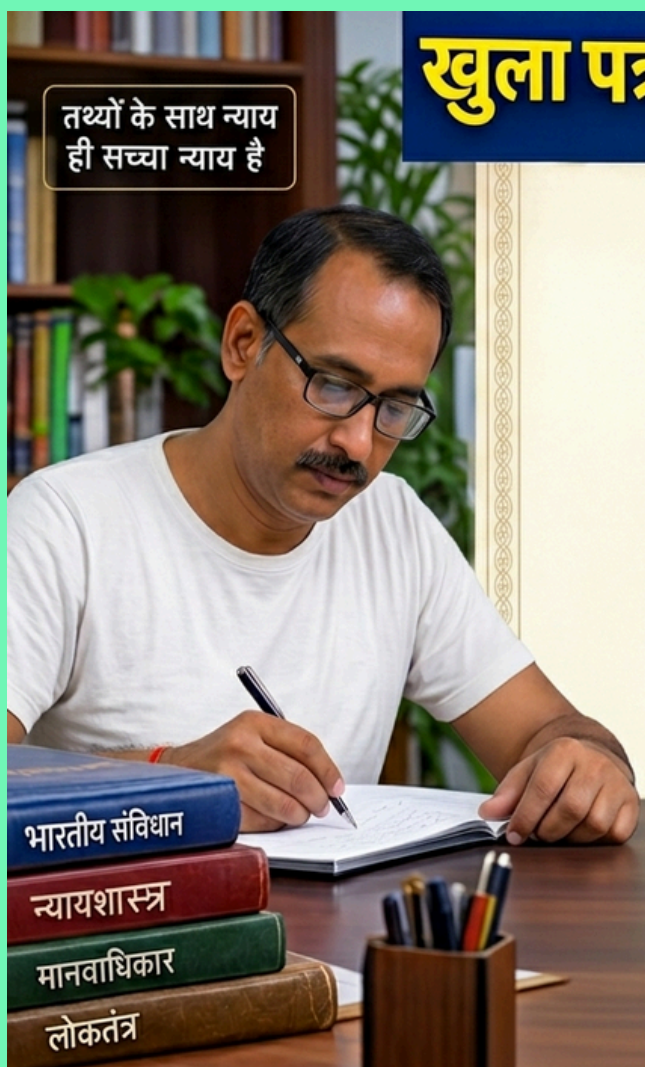
रहे हैं। मैंने खुद देखा है कि उपहार सिनेमा कांड में हमारा प्रशासन और न्यायपालिका ने जितने कठोर व्यवहार किया, उतनी कठोरता उचित नहीं थी, क्योंकि उपहार सिनेमा का मामला एक गलती थी, उसका दंड साधारण होना चाहिए था। दूसरी ओर बेअंत सिंह की हत्या एक गंभीर अपराध था, अपराधी को तुरंत फाँसी होनी चाहिए थी, लेकिन आपने वहाँ मानवता का व्यवहार किया। गलती और अपराध को यदि आप इस प्रकार अलग-अलग नहीं करेंगे तो भविष्य में अपराध बढ़ते ही जाएँगे। अभी आपने दो-तीन दिन पहले ही सुना होगा कि पंजाब में किसी सिख ने

किसी व्यक्ति से ₹10 के झगड़े पर तलवार से उसका हाथ काट दिया। यह अपराध था, भूल नहीं थी। लेकिन दूसरी ओर दिल्ली में एक बिल्डिंग गिर जाती है। बिल्डिंग को बनाने वाले ने गलती की थी। उस गलती का दंड मिलना चाहिए था, लेकिन आप उसके साथ इतना कठोर व्यवहार कर रहे हैं, जैसे कि उसने कोई गंभीर अपराध कर दिया हो। इसलिए हमें अपनी नीतियों पर फिर से विचार करना चाहिए। भूल और अपराध, ये दोनों अलग-अलग होते हैं और दोनों के बीच में अंतर बनाए रखना उचित है।

खुला पत्रः हर्ष मंदर जी के नाम

ज्ञानेंद्र आर्य

तथ्यों के साथ न्याय ही सच्चा न्याय है



खुला पत्रः हर्ष मंदर जी के नाम

- ज्ञानेंद्र आर्य -



विषयः आपके लेख "अफ़ज़ल गुरु की फाँसी: न्याय और दया की कसौटी" पर एक गंभीर आपत्ति
आदरणीय हर्ष मंदर जी,

आपका उपरोक्त लेख ध्यान से पढ़ने के बाद यह पत्र लिखना आवश्यक लगा। यह पत्र इस आधार पर लिखा जा रहा है कि सार्वजनिक जीवन में लिखा गया कोई भी लेख

— विशेषकर वह जो राज्य, मृत्युदंड और न्यायिक प्रक्रिया जैसे गंभीर विषयों से जुड़ा हो — इस कसौटी पर कसे जाने का हकदार है कि क्या उसने तथ्यों के साथ न्याय किया है। दुर्भाग्य से आपका लेख इस कसौटी पर कई

जगह खरा नहीं उतरता।

1. लेख की वास्तुकला ही भ्रामक है

आपका लेख अफ़ज़ल गुरु के मामले से शुरू होकर धीरे-धीरे मृत्युदंड के विरुद्ध एक व्यापक नैतिक तर्क में बदल जाता है। यह अपने आप में कोई अपराध नहीं, लेकिन जिस तरह आप एक विशिष्ट, विवादास्पद और साम्प्रदायिक रूप से संवेदनशील मामले को चुनकर उसे अपने वैचारिक निष्कर्ष तक पहुँचने का माध्यम बनाते हैं, वह प्रश्न खड़ा करता है: क्या यह लेख अफ़ज़ल गुरु के मामले का निष्पक्ष पुनर्मूल्यांकन है, या मृत्युदंड-विरोध को स्थापित करने के लिए चुना गया एक सुविधाजनक केस-स्टडी? आपकी सामग्री-चयन स्वयं इस दूसरे विकल्प की ओर इशारा करती है।

2. दोषसिद्धि और प्रत्यक्ष हत्या के बीच जानबूझकर धुंधलापन

आप बार-बार दोहराते हैं कि अफ़ज़ल गुरु संसद पर हमला करने वाले पाँच हमलावरों में नहीं था और किसी की हत्या में प्रत्यक्ष रूप से शामिल नहीं था। यह तथ्यात्मक रूप से सही है, लेकिन आप इसे इस तरह प्रस्तुत करते हैं मानो यह दोषसिद्धि के विरुद्ध निर्णायक तर्क हो। आप स्वयं जानते हैं कि आपराधिक षड्यंत्र और प्रत्यक्ष हत्या भारतीय दंड संहिता में अलग-अलग अवधारणाएँ हैं, और सर्वोच्च न्यायालय ने परिस्थितिजन्य साक्ष्यों की श्रृंखला के आधार पर षड्यंत्र में भूमिका को सिद्ध माना था। इस कानूनी भेद को धुंधला रखना पाठक को गुमराह करना है।

3. "परिस्थितिजन्य साक्ष्य" शब्द का दुरुपयोग

आप यह उल्लेख करते हैं कि सर्वोच्च न्यायालय ने साक्ष्यों को परिस्थितिजन्य माना — यह सच है — लेकिन आप इसे इस तरह प्रस्तुत करते हैं जैसे "परिस्थितिजन्य" का अर्थ स्वतः "संदिग्ध" या "कमजोर" हो। भारतीय न्यायशास्त्र में परिस्थितिजन्य साक्ष्यों की पूर्ण श्रृंखला पर दोषसिद्धि सर्वथा मान्य आधार है। एक सुप्रशिक्षित लेखक और मानवाधिकार कार्यकर्ता होने के नाते आप इस भेद से अनभिज्ञ नहीं हो सकते — फिर भी आपने इसे स्पष्ट नहीं किया।

4. "56 गवाहों से जिरह नहीं हुई" — एक तथ्यात्मक रूप से भ्रामक दावा

यह इस पत्र की सबसे गंभीर आपत्ति है। आपके लेख (और इस पर आधारित मानवाधिकार-वृत्त की सामग्री) में यह दावा किया गया है कि 80 गवाहों में से 56 से जिरह नहीं हुई। मूल न्यायिक रिकॉर्ड की जाँच से यह तस्वीर कहीं अधिक जटिल और आपके दावे के विपरीत निकलती है:

- दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले के अनुसार PW-21 से PW-80 तक अफ़ज़ल गुरु को स्वयं जिरह करने का अवसर दिया गया था।

- अफ़ज़ल ने स्वयं PW-20, PW-29 और PW-66 से जिरह की।

- अनेक गवाहों से सभी आरोपियों की ओर से common cross-examination हुई।

- जहाँ आवश्यक था, amicus curiae ने जिरह की।

"56 गवाहों से जिरह नहीं हुई" और "56 गवाहों से अभियुक्त की ओर से किसी ने जिरह नहीं की" — ये दो अलग-अलग दावे हैं, और आपका लेख इनके बीच के अंतर को मिटा देता है। यह कोई मामूली भूल नहीं, बल्कि पाठक के मन में एक ऐसी तस्वीर गढ़ने वाला दावा है जो रिकॉर्ड से मेल नहीं खाती।

5. सुप्रीम कोर्ट ने इस आरोप को सुना और अस्वीकार किया — आपने यह क्यों छिपाया?

यह इस पत्र का सबसे मूलभूत आक्षेप है। आपने अपने लेख में यह प्रभाव दिया कि अप्रभावी कानूनी प्रतिनिधित्व का मुद्दा उपेक्षित रह गया। तथ्य यह है कि *यही तर्क सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष स्वयं अफ़ज़ल गुरु की ओर से रखा गया था*, और न्यायालय ने इसे विस्तार से दर्ज करके अस्वीकार किया — यह कहते हुए कि विचारण न्यायाधीश ने प्रभावी विधिक सहायता देने का प्रयास किया था और नियुक्त वकील अनुभवहीन या अप्रभावी नहीं था। यह भी रिकॉर्ड में है कि 8 जुलाई 2002 को अफ़ज़ल ने स्वयं अपनी पसंद के वकील की माँग की थी, न्यायालय ने उनसे संपर्क भी किया, परंतु वे मुकदमा लेने को तैयार नहीं हुए। एक लेख जो "अफ़ज़ल को प्रभावी कानूनी सहायता नहीं मिली" कहता है, परंतु यह नहीं बताता कि यही आरोप सर्वोच्च न्यायालय के सामने रखा जा चुका था और अस्वीकृत हुआ था — वह पाठक के साथ अन्याय करता है। यह omission संयोगवश नहीं लगता।

6. "सामूहिक अंतरात्मा" की आलोचना जायज़, पर प्रस्तुति एकतरफा

"Collective conscience" की अवधारणा पर आपका प्रश्न — कि क्या न्याय साक्ष्य से तय हो या जनाक्रोश से — वैध और महत्वपूर्ण है। परंतु आप इसे इस तरह प्रस्तुत करते हैं मानो यही दोषसिद्धि का एकमात्र आधार था, जबकि यह मूलतः सजा की गंभीरता के संदर्भ में प्रयुक्त एक विचार था। इस भेद को स्पष्ट न करना पाठक को गुमराह करता है।

7. राष्ट्रपतियों की दया-निर्णय-प्रक्रिया का गलत चित्रण

आप लिखते हैं कि दो राष्ट्रपतियों ने दया याचिका पर मुहर लगाने से इनकार किया, मानो यह दोषसिद्धि पर संदेह का प्रमाण हो। अनुच्छेद 72 की क्षमादान-शक्ति न्यायिक दोषसिद्धि की पुनर्समीक्षा नहीं है। इस संवैधानिक भेद को धुंधला करना पाठक को यह भ्रम देता है कि राष्ट्रपतियों की झिझक स्वयं दोष के प्रति संदेह की स्वीकृति थी।

8. "अच्छा कैदी था" — एक तार्किक छलांग

लिखते हैं कि अफ़ज़ल जेल में अनुशासित था और उसका उग्रवाद से मोहभंग हो चुका था। यह दया-याचिका और सजा में छूट के संदर्भ में एक mitigating factor हो

सकता है, परंतु आपके लेख में यह लगभग निर्दोषता के तर्क के करीब पहुँचा दिया जाता है — जो तार्किक रूप से नहीं ठहरता।

9. उम्रकैद बनाम मृत्युदंड की तुलना में अशुद्धि

आप यह तुलना करते हैं कि यदि गुरु लगभग तीन वर्ष और जेल में रहता तो उम्रकैद की अवधि पूरी कर लेता — यह भारतीय दंड व्यवस्था में उम्रकैद की प्रकृति (जो स्वतः निश्चित वर्षों बाद रिहाई की गारंटी नहीं देती) को गलत ढंग से प्रस्तुत करता है, जिससे पाठक को झूठी निश्चितता का आभास होता है।

10. पीड़ित पक्ष लगभग अनुपस्थित है

न्याय की नैतिकता में कम-से-कम तीन पक्ष होते हैं — अपराधी, पीड़ित और समाज। आपकी संवेदना लगभग पूरी तरह अपराधी और उसके एक विशेष वैचारिक समर्थक-वर्ग के बीच केंद्रित है। संसद हमले में मारे गए सुरक्षाकर्मियों और उनके परिवारों की न्याय संबंधी अपेक्षा आपके लेख में लगभग अदृश्य है। यह असंतुलन आकस्मिक नहीं लगता।

11. स्रोत-चयन में स्पष्ट confirmation bias

आपके लेख में उद्धृत लगभग सभी आवाज़ें — नंदिता हक्सर, कॉलिन गोंज़ाल्वेस, अरुंधति रॉय, Amnesty International — एक ही वैचारिक दिशा से आती हैं। किसी भी ऐसे न्यायविद के तर्क को आपने विस्तार से जगह नहीं दी जो यह कहता हो कि निचली अदालत की प्रक्रियागत कमियों के बावजूद सर्वोच्च न्यायालय का निष्कर्ष परिस्थितिजन्य साक्ष्यों की दृष्टि से न्यायसंगत था। एक "आलोचनात्मक" लेख से यह अपेक्षा उचित है कि वह विरोधी पक्ष का सबसे सशक्त तर्क भी सामने रखे — आपने यह नहीं किया।

12. जो सही है, उसे स्वीकार करना भी आवश्यक है

यह पत्र आपकी संपूर्ण मंशा को खारिज नहीं करता। फांसी की प्रक्रिया — परिवार को समय पर सूचना न मिलना, अंतिम मुलाकात न होना, शव न सौंपा जाना — पर आपकी आलोचना वास्तविक और गंभीर है। स्वयं पूर्व राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने भी इस दिशा में लिखा है, और संयुक्त राष्ट्र के विशेष प्रक्रिया तंत्र ने भी due-process संबंधी चिंताएँ दर्ज की हैं। यह हिस्सा आपके लेख का सबसे मजबूत और सबसे ईमानदार पक्ष है। परंतु प्रक्रिया की आलोचना और दोषसिद्धि पर संदेह — ये दो अलग दावे हैं, और आपका लेख इन्हें बार-बार आपस में घुला देता है।

निष्कर्ष

"अफ़ज़ल गुरु को फांसी नहीं होनी चाहिए थी" और "अफ़ज़ल गुरु निर्दोष था" — ये दो बिल्कुल भिन्न दावे हैं। आपका लेख स्पष्टतः केवल पहला दावा स्थापित करने का प्रयास करता है, परंतु इसकी प्रस्तुति — चुनिंदा तथ्य, अधूरे संदर्भ, तथ्यात्मक रूप से संदिग्ध आँकड़े, और

एकतरफा स्रोत-चयन — पाठक को व्यवस्थित रूप से दूसरे, कहीं अधिक गंभीर निष्कर्ष की ओर धकेलती है।

एक लेखक और सामाजिक विचारक के रूप में आपकी सद्भावना पर संदेह किए बिना भी, यह कहना आवश्यक है: जब विषय मृत्युदंड और राज्य की शक्ति जैसा गंभीर हो, तब तथ्यों के साथ यह स्वतंत्रता लेना — चाहे वह किसी भी नैतिक उद्देश्य के नाम पर हो — पाठकों और स्वयं न्याय की अवधारणा दोनों के साथ अन्याय है।

सादर,

एक चिंतित पाठक

यह पत्र सार्वजनिक न्यायिक अभिलेखों (सर्वोच्च न्यायालय, 4 अगस्त 2005 तथा दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसलों) की जाँच पर आधारित है।

प्रकृति-विरोधी जीवन और मनुष्यता का पतन - शुर्वेदु मोहापात्रा



इस सृष्टि के असंख्य प्राणी अपने-अपने प्राकृतिक अनुशासन और नियमों के अनुसार जीवन जीते हैं। पशु,

पक्षी, वृक्ष, वनस्पतियाँ और जलचर— नभचर आदि सभी प्रकृति की व्यवस्था के साथ एक अद्भुत सामंजस्य में अपना जीवन संचालित करते हैं। उनमें जीवन की सहजता है, आवश्यकताओं की मर्यादा है और प्रकृति के प्रति एक स्वाभाविक अनुशासन है। मनुष्य को प्रकृति ने विवेक, बुद्धि और विचार करने की अद्भुत क्षमता दी थी। वह इस क्षमता का उपयोग प्रकृति को समझने और उसके साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिए कर सकता था। लेकिन दुर्भाग्य से मनुष्य ने अपनी बुद्धि को प्रकृति के साथ चलने के बजाय प्रकृति पर विजय प्राप्त करने का साधन बना लिया। उसने स्वयं को प्रकृति से अलग समझना शुरू कर दिया।

यहीं से मनुष्य का प्रकृति से विच्छेद प्रारंभ हुआ।

आज मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की इच्छाओं में और इच्छाओं को असीम लालसा में बदल चुका है। जंगल काटता है, नदियों को प्रदूषित करता है, मिट्टी को विषाक्त करता है, वायु को दूषित करता है और असंख्य जीवों के प्राकृतिक आवास नष्ट करता है। विकास के नाम पर वह उसी प्रकृति को नष्ट कर रहा है, जिसके बिना उसका अपना अस्तित्व संभव नहीं। प्रकृति से दूर होता हुआ मनुष्य केवल पर्यावरण को ही नहीं बिगाड़ रहा, बल्कि अपने भीतर की प्राकृतिक सहजता को भी खो रहा है। कृत्रिम जीवनशैली, असीम उपभोग, प्रतिस्पर्धा, स्वार्थ और अहंकार ने उसके जीवन को तनाव और असंतोष से भर दिया है। वह सुख की खोज में ऐसी चीजों के पीछे दौड़ रहा है जो उसके भीतर शांति पैदा करने के बजाय बेचैनी बढ़ा रही हैं। इस अर्थ में मनुष्य प्रकृति-विरोधी होकर 'प्रकृतिछड़ा' बनता जा रहा है। और जब जीवन प्रकृति के मूल अनुशासन से कट जाता है, तो मनुष्य अपने लिए और

दूसरों के लिए संकट पैदा करने लगता है। यही वह अवस्था है जहाँ मनुष्य अपनी मनुष्यता खोकर 'मनहूस' बन जाता है। मनुष्य होने का अर्थ प्रकृति से ऊपर होना नहीं, बल्कि प्रकृति के साथ चेतन और जिम्मेदार सह-अस्तित्व स्थापित करना है। उसे फिर से समझना होगा कि यह विशाल दुनिया केवल मनुष्य की संपत्ति नहीं है। इस धरती पर जितना अधिकार मनुष्य का है, उतना ही अन्य समस्त दुनिया का भी है। मनुष्य की वास्तविक प्रगति प्रकृति को जीतने में नहीं, प्रकृति के नियमों को समझकर उनके साथ संतुलित जीवन जीने में है। जिस दिन मनुष्य अपनी बुद्धि को प्रकृति के विरुद्ध नहीं, प्रकृति के संरक्षण और समन्वय के लिए उपयोग करना सीख जाएगा, उसी दिन उसके भीतर की मनुष्यता पुनः जागृत होगी।

प्रकृति से जुड़ना ही यथार्थ जीवन से जुड़ना है।

चारों ओर दृश्यमान प्रकृति की भिन्न भिन्न रूपों का सम्मान करना ही मनुष्य होने की पहली पहचान है।

संस्थागत समाचार

दो दिवसीय राँची अधिवेशन वैचारिक विमर्श और संस्थागत दिशा के साथ संपन्न

चार सत्रों में आयोजित अधिवेशन में व्यवस्था परिवर्तन, सामाजिक समरसता, वर्ग समन्वय और समाज सशक्तिकरण पर हुआ मंथन राँची, 26 सितंबर 2026। लोकव्यवस्था जागरण अभियान के अंतर्गत आयोजित ज्ञान केंद्र प्रांतीय अधिवेशन का प्रथम दिवस चार सत्रों की प्रस्तावित रूपरेखा में उद्घाटन एवं परिचय तथा "व्यवस्था परिवर्तन कैसे और क्यों?" विषय पर व्यापक वैचारिक विमर्श के साथ संपन्न हुआ। पहले दिन के विमर्श में बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल और ओडिशा से आए साथियों ने समाज व्यवस्था, राज्य की भूमिका, सामाजिक शक्तियों, व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा व्यवस्था परिवर्तन के विभिन्न आयामों पर अपने विचार रखे।

27 सितंबर को संस्थागत ढांचे और कार्ययोजना पर चर्चा

अधिवेशन के दूसरे दिन, 27 सितंबर को लोकव्यवस्था जागरण अभियान के संस्थागत ढांचे एवं उसकी कार्ययोजना पर चर्चा की गई। चारों प्रांतों की कार्यकारिणीयों का गठन किया गया, साथ ही साथ सभी कार्यकारिणीयों की प्रथम बैठक भी संपन्न हुई। इसके बाद चौथे एवं अंतिम सत्र में पूरे अधिवेशन की समीक्षा, प्राप्त निष्कर्षों तथा आगामी कार्यक्रमों पर विचार करते हुए शिविर का समापन किया गया।

सामाजिक समरसता और वर्ग समन्वय पर जोर

अधिवेशन के दौरान सामाजिक समरसता, वर्ग

समन्वय और समाज सशक्तिकरण को अभियान की महत्वपूर्ण आधारभूमि के रूप में सामने रखा गया। प्रतिभागियों का विचार था कि बंगाल, ओडिशा, बिहार और झारखंड में चल रहा यह वैचारिक प्रयास समाज के सामने व्यवस्था और उसके स्वरूप से जुड़े प्रश्नों को नए ढंग से रखने का अवसर प्रदान करता है।

राज्य और समाज के संबंध पर गंभीर विमर्श

वक्ताओं ने राज्य द्वारा समाज की स्वशासी शक्तियों के बढ़ते केंद्रीकरण तथा व्यक्ति के निजी जीवन से जुड़े निर्णयों तक राज्य की भूमिका के विस्तार को लेकर चिंता व्यक्त की। चर्चा में यह प्रश्न भी उठाया गया कि समाज की स्वतंत्र और स्वशासी शक्तियों को किस प्रकार सशक्त किया जाए तथा राज्य की भूमिका को उसके मूल दायित्वों तक किस प्रकार सीमित रखा जा सकता है। कुछ वक्ताओं ने इस बात पर भी चिंता व्यक्त की कि जनभावनाओं और संवेदनशील मुद्दों के प्रभाव में कई बार ऐसी कानून एवं व्यवस्था संबंधी संरचनाएँ विकसित होती हैं, जिनसे व्यक्ति की स्वतंत्रता प्रभावित हो सकती है। वक्ताओं ने कहा कि भारतीय समाज की परंपरा में चिंतन, संवाद और विचार-मंथन को महत्वपूर्ण स्थान रहा है, इसलिए सार्वजनिक नीतियों और व्यवस्थाओं पर व्यापक सामाजिक विमर्श आवश्यक है।

विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका की भूमिकाओं पर चर्चा

अधिवेशन में अनेक साथियों ने विधायिका के विचार-मंथन से विमुख होने, न्यायपालिका की सक्रियता

तथा कार्यपालिका में बढ़ते भ्रष्टाचार को लेकर अपनी चिंताएँ व्यक्त कीं। चर्चा में शक्ति के विभिन्न केंद्रों के बीच संतुलन और उनके संवैधानिक दायित्वों पर विचार किया गया। वक्ताओं ने कहा कि राज्य का मूल दायित्व नागरिकों की सुरक्षा, न्याय की व्यवस्था और उसका कर्तव्य है लोककल्याण। इस संदर्भ में राज्य की प्राथमिकताओं और उसके कार्यक्षेत्र पर समाज में निरंतर विमर्श की आवश्यकता बताई गई। वक्ताओं ने यह प्रश्न भी सामने रखा कि राज्य और समाज के संबंधों में संतुलन स्थापित करने तथा सामाजिक शक्तियों को पुनः सशक्त करने के लिए आयोजित ऐसे वैचारिक कार्यक्रम भविष्य में किस प्रकार के परिणाम उत्पन्न कर पाएंगे। इसका वास्तविक प्रभाव आने वाले समय में सामने आएगा।

जिला स्तर तक पहुंचेगा अभियान

अधिवेशन के दौरान प्रत्येक प्रांत में जिला स्तर के

कार्यकर्ताओं के साथ अलग-अलग कार्यक्रम आयोजित करने की योजना पर भी सहमति बनी। इसके साथ ही चारों प्रांतों की प्रांतीय कार्यकारिणियों ने इस कार्य का बीड़ा उठाया। निर्णय लिया गया कि आगामी कुछ महीनों में प्रत्येक प्रांतीय कार्यकारिणी अपने-अपने क्षेत्र में जिला-वार संगठनात्मक रचना पूरी करेगी, स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार कार्ययोजना तैयार करेगी तथा जिला स्तर पर अध्ययन, संवाद एवं अभियान से जुड़े कार्यक्रम आयोजित करेगी। इस प्रकार रांची अधिवेशन के माध्यम से चार राज्यों में चल रहे वैचारिक एवं संगठनात्मक प्रयास को जिला और आगे चलकर स्थानीय स्तर तक ले जाने की दिशा निर्धारित की गई है। दूसरे दिन की चर्चा में इसी संस्थागत ढांचे को अधिक स्पष्ट रूप देने तथा आगामी कार्ययोजना को अंतिम रूप देने पर विशेष ध्यान रहा।